कल की दुनिया

(युद्ध और विज्ञान)

दुनिया की शकल रोज, सुबह, शाम, तेजी से बदल रही है। आज हमें किराये पर भी मकान मिलना दूभर है, कल छोटे से सूटकेस में साबुन और तौलिये के साथ कुनबे भर का घर लेकर हम काशी से कलकत्ते में ले जा सकेंगे। बच्चे माँ के पेट नहीं, शीशे के मर्तबान में पैदा होंगे। सैर के लिए आकाश में मार्ग बनेंगे। हमारी शक्ल-सूरत, हमारे घर-बार, गाँव, नगर, सबका रूप-रंग, तौर तरीका, सारी दुनिया ही अजीब तेज़ी से बदल रही है। और अब हमारे सम्मुख प्रश्न है ; हमारी 'कल की दुनिया' कैसी होगी ?

रा० र० खाडिलकर,
बी० एस० सी०

प्रकाशक

प्रकाश-मन्दिर

काशी आर० एस० (बनारस)

मूल्य १।।)

मुद्रक

पी० घोष,

सरला प्रेस, बनारस।

युद्ध और विज्ञान अविच्छेद्य

युद्ध अभी तक किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय विधान में अनैतिक संस्था नहीं माना गया है। जो कुछ विधान-नियम आदि बने हैं वे युद्ध को रोकने के लिए नहीं, पर उसके संचालनके लिए बने है। इस सम्बन्ध में दुनिया में बड़ा विवाद है, पर वस्तुस्थिति यही है। मानवजाति का इतिहास इस युद्धो-संघर्षों, जीवन-कलह का इतिहास है। इसी कलह की आवश्यकता ने विज्ञान को जन्म दिया और उसका संवर्धन किया। इसीलिए हम युद्ध और विज्ञान को अलग-अलग नहीं कर सकते। वैज्ञानिक उन्नति का इतिहास इसी जीवन-कलह की प्रगति का इतिहास है। शायद इसीलिए रस्किन ने कहा कि 'विज्ञान, साहित्य और कला की युद्ध में उन्नति और शांति में पतन होता है।' रस्किन की उक्ति का पूर्वार्द्ध बिलकुल ठीक है, उत्तरार्द्ध के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है, पर वह विषय हमारा नहीं है।

तो हमने देखा कि युद्ध और विज्ञान साथ साथ चलते हैं, वे अविभाज्य हैं। पिछले १५० वर्षों में विज्ञान दिन दूनी रात चौगुनी गति से उन्नति करता गया और इसी आधार पर युद्ध भी तेजी से भीषणतम होते गये। पर इन सब उन्नतियों में द्वितीय महायुद्ध ने बाजी मार ली है। इस युद्ध की अवधि में विज्ञान ने कितनी भारी छलांग मारी है इसकी कल्पना जनसाधारण को बहुत मुश्किल

से हो सकती है। गत ५-६ वर्ष की वैज्ञानिक उन्नति क्रांतिकारी रही है, वह मानव-जीवन में ऐसा परिवर्तन करने वाली है कि १९३९ का मानव-जीवन का प्रकार २०-२५ वर्ष के बाद हास्यास्पद मालूम होने लगेगा।

विज्ञान की उन्नति युद्ध में मनुष्य की स्नायविक शक्ति को, उसके हाथ-पैर के व्यर्थ करती जा रही है, मस्तिष्क को प्राधान्य आता जा रहा है। या यदि हम यह कहे कि आजकल की लड़ाई फौजों में नहीं होती, दोनो युद्धरत पक्षों के वैज्ञानिकों मे होती है, फौजें तो शिखंडी का काम करती हैं, तो यह अत्युक्ति न होगी। किसी ने कहा है कि युद्ध में सौ वैज्ञानिक दस लाख सैनिको से अधिक मूल्यवान होते हैं। बात कितनी सच है!

पर हम एक बात नहीं भूल सकते। युद्ध और विज्ञान अवि-च्छेद्य अवश्य है, पर उनमें एक बहुत बड़ा फर्क है। युद्ध हमेशा ही विनाशक होता है, आज तक किसीने युद्ध को प्रत्यक्ष रूप से संस्कृति-संवर्धक नहीं कहा (अप्रत्यक्ष रूप से है ही, क्योंकि इसी के कारण विज्ञान की और ज्ञान की उन्नति होती है।) पर विज्ञान विनाशक से अधिक विधायक रहा है। विज्ञान प्रारम्भ से स्वतंत्र रहा है और इसी स्वातंत्र्यके कारण संकृतियां उन्नत होती गयी हैं। स्वतत्र विज्ञान जब अपनी योजनाएं बनाता है तो उसकी पुस्तक में कभी विनाशक बातो की बू भी नहीं रहती। इसी युद्ध में पेनिसिलिन, मलेरिया नियंत्रण, स्वास्थ्य आदि के संबन्ध में विज्ञान ने क्या किया है इसे इसी पुस्तक में पढ़ कर पाठक समझ लेगे कि विज्ञान विधायक क्या क्या कर सकता है। गरीबी, विनाश, अज्ञान आदि के नाश के लिए विज्ञान ने क्या किया है इसे देखकर दाँतों उंगली दबानी पड़ेगी। विज्ञान तो विशेष ज्ञान है, वह

तटस्थ है, पुरुष की तरह। उससे जो कुछ लीला करानी रहती है वह तो मनुष्य और उसके आसपास की स्थिति कराती है।

द्वितीय महायुद्ध मे उड़न बम, वाण बम और परमाणु बम के विस्फोट ने जो भारी आवाजें कं उनके सामने और दूसरी आवाजें सुनाई देना असंभव हो गया। ये बम तथा परमाणु बम गरजे और बरसे भी, पर यह नहीं समझना चाहिये कि वे जितने गरजे उतने ही बरसे भी। उससे अधिक बरसे कई और वैज्ञानिक शोध। वे गरजे कुछ नहीं। रेडार, पेनिसिलिन, जेटशक्ति, रेडियो दर्शन (रंग न भी), रेडियो चालन, रेडियो मापन, रेडियो ध्वनि-आलेखन, मृत्यु-विजय, रेडियो-मस्तिष्क, डी. डी. टी. आदि वस्तुओ और विद्याओ ने क्रांतिकारी उन्नति की। परमाणु बम और वाण बमो से अधिक इन्हें जानना आवश्यक है क्योंकि ये सब विद्याए तो कल हमारे घरोंमें घुसकर हमारा जीवन अधिक सरल, अधिक सुखमय और अधिक स्वास्थ्यपूर्ण करनेवाली हैं— शायद हम-आपको अमर या कम से कम त्रिशतंजीव ही न कर दें!!

युद्ध और विज्ञान का यह निकट संबन्ध होने के कारण ही यह कहा जाता है कि वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से युद्ध का एक वर्ष शांति के दस वर्षों के बराबर होता है। पुराने युद्धो के लिए यह कहावत तो ठीक ही थी, पर द्वितीय महायुद्ध में विज्ञान ने जो क्रांतिकारी छलांग मारी उससे तो कहना पड़ता है कि शांति के १०० वर्ष में भी वह कार्य न होता जो इस युद्ध के प्रारम्भिक २-३ साल में हुआ है।

विभिन्न देशों की प्रगति

विज्ञान का महत्त्व इतना अधिक होने के कारण ही विभिन्न युद्धरत राष्ट्रों ने नयी नयी खोजो के के लिए अपने वैज्ञानिकों को

मुँहमांगा धन दिया। वैज्ञानिक प्रगति में द्वितीय महायुद्ध में अमेरिका ने बाजी मार ली। युद्धकाल में जर्मनी-जापान-इटली में हुई प्रगति का उपयोग उन देशो के हार जाने के कारण उस देश के लोग नहीं कर सकते, पर वी १, वी २ आदि अस्त्रोंसे यह स्पष्ट है कि जर्मनी इस दिशा में अमेरिका से भी आगे बढ़ गया था। पाठक जानते ही होंगे कि परमाणु-भग के सिद्धांत का पहला प्रयोग जर्मनी में ही हुआ था।

इस युद्ध में यदि जीतकर भी किसी का भारी नुकसान हुआ तो वह ब्रिटेन का रहा। चर्चिल ने रूजवेल्ट पर विश्वास रख और ब्रिटेन के जर्मनी के बहुत पास होने के कारण सामरिक आवश्यकता के वशीभूत होकर ब्रिटेन का सारा वैज्ञानिक ज्ञान अमेरिका को बताया और अमेरिका ने उससे पूरा लाभ उठाकर फिर ब्रिटेन को ठेंगा दिखाया। परमाणु बम के बारे में ब्रिटेन की इसी कारण बड़ी दुर्दशा हुई है।

ब्रिटेन ने उधार पट्टे के बदले में अपने सारे वैज्ञानिक रहस्य अमेरिका को बताने का वचन दिया था। लड़ाकू वायुयानों में लगे 'जैरीकेन', 'मल्वरी' नामके विशाल और पूर्व-निर्मित बंदरगाह, नये किस्म के रेडियो और सिग्नलिंग यंत्र, नये और अधिक प्रभावशाली विस्फोटक, 'लिबर्टी' जहाजो के डिजाइन, रेडार, रोल्स राइस 'मर्लिन' इञ्जन, जेट विमान, पेनिसिलिन, डी. डी. टी. और परमाणु बम का रहस्य भी ब्रिटेन ने ही अमेरिका को बताया, पर बदले में ब्रिटेन को क्या मिला? अमेरिका ने युद्ध समाप्त होते ही कलम की एक फटकार से उधार पट्टा बन्द कर दिया और ब्रिटेन वैज्ञानिक साधनों में भी अमेरिका से १०–२० वर्ष पीछे रह गया।

वैज्ञानिक खोजो के बारे में बेचारा ब्रिटेन अमेरिका पर भरोसा कर खासा बेवकूफ बना। रेडार की खोज ब्रिटेन में हुई, पर उसका रहस्योद्घाटन करते समय उसका सारा श्रेय अमेरिका ने अपने को ले लिया। इसी झगड़े में दुनिया को रेडार का ज्ञान कई हफ्ते देर बाद मिला क्योंकि रहस्योद्घाटन की विज्ञप्ति के बारे में ब्रिटेन-अमेरिका में झगड़ा चल रहा था।

द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटेन की अधिकतर वैज्ञानिक शक्ति रक्षात्मक उपाय खोज निकालने में ही खर्च हुई। होता यह था कि जर्मनी एक के बाद एक नया शस्त्र या अस्त्र निकालता और ब्रिटेन उसीका काट ढूंढ निकालने में लग जाता। जहाँ एक गुप्तास्त्र का काट मिलता वहाँ जर्मनी का चट दूसरा गुप्तास्त्र तैयार हो जाता।

इस युद्ध काल में यद्यपि रूस में (मृत्यु-विजय को छोड़ कर) किसी प्रकार का असाधारण वैज्ञानिक शोध होने की घोषणा नहीं हुई है, फिर भी वैज्ञानिक प्रगति में उसका नम्बर दूसरा है। रूस में विशुद्ध विज्ञानके लिए सरकार की ओरसे जितना धन खर्च किया जाता है उतना ही विज्ञान के व्यावहारिक उपयोग के (टेकनालाजी) लिए भी खर्च किया जाता है। अमेरिका में अभी यह नहीं होता, पर रूसकी देखा-देखी वह भी ऐसा कर देगा इस में सदेह नहीं। रूस में वैज्ञानिक अनुसधान के लिए युद्ध काल में जितनी योजनाएं बनायी गयीं वे सब बहुत आगे की सोच कर दूर दृष्टि से और व्यापक परिणाम के खयाल से बनायी गयी हैं और समझा जाता है कि १० साल के अंदर रूसी विज्ञान अमेरिकन विज्ञान से आगे निकल जायगा। रूस में अब उच्च विज्ञान के अध्ययन करने वालों के लिए अंग्रेजी जानना अनिवार्य

कर दिया गया है। रूस किसी देश से पीछे नहीं रहना चाहता। रूसका राजनीतिक ढांचा ऐसा है कि वहां विज्ञान की उन्नति के लिए यथेष्ट अवसर मिलता है। जहां ब्रिटेन-अमेरिका मे वैज्ञानिक सैद्धांतिक संशोधन और विज्ञान की खोजों के व्यावहारिक उपयोग के कामके बीच बहुत बड़ी खाई रहती है, वहां रूसमें, व्यावहारिक संशोधन भी राष्ट्रीय काम होने के कारण, वह खाई भी खाई नहीं रहती। ब्रिटेन और अमेरिका में यदि कोई प्रोफेसर किसी कारखाने में काम करे तो वह समाज की नजरों में गिर जाता है। रूस में यह बात नहीं क्योंकि कारखाने भी सरकार के ही हैं। गोर्की में रूस ने यूरोप का सब से बड़ा मोटर कारखाना बनाया है। इस मोलोटोफ कारखाने से-१९५० तक ५ वर्ष में सरकार ४२ करोड़ रूबल खर्च करनेवाली है।

द्रव आक्सिजन का दुनिया भर का सब से बड़ा कारखाना रूस में ही है। जून १९४५ के आखिरी सप्ताह में दुनिया भर के करीब १५० वैज्ञानिकों का मास्को में सम्मेलन हुआ था। इस में जाने के लिए चर्चिलने १० ब्रिटिश वैज्ञानिकों को अनुमति नहीं दी थी। अब खयाल किया जाता है कि परमाणु बम का रहस्य गुप्त रखने के खयाल से ऐसा किया गया था। रूसी वैज्ञानिक ए० एफ० जोफने इस सम्मेलनमें भाषण करते हुए कहा कि सोवियट सरकार नियोजित विज्ञान के होते हुए भी महत्त्व के स्वतंत्र वैज्ञानिक संशोधन मे बाधा नहीं डालती। उन्हों ने यह भी बतायाकि सन् १९३० की मई से हम लोग परमाणु के प्रोटान पर प्रयोग कर रहे हैं और सरकार ने हम को मुँह मांगा धन दिया।

रूसी वैज्ञानिक ने परमाणु प्रोटान का जिक्र क्यो किया यह अब अच्छी तरह समझ में आ गया होगा।

---

(२)

युद्ध क्रिया में क्रांति

युद्धकी भीषणता के साथ उसकी व्यापकता भी बढ़ी। पहले युद्ध केवल स्थल पर होते थे। इसके बाद जल पर होने लगे, जल के अंदर होने लगे, आकाश में वायु में होने लगे, वायु के ऊपर शून्य में भी युद्ध पहुँच गया। ईथर या शून्य में प्रचार युद्ध शुरू हुआ। शत्रु पक्षका हिम्मत हौसला और साहस धैर्य नष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिक युद्ध शुरू हुआ। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जीवन और विज्ञानका हर एक अंङ्ग युद्ध में रत हो जाता है। कला को भी युद्धकार्य के लिए नौकरी करनी पड़ती है। युद्ध जनित खाद्य संकट, वस्त्र संकट, गृह संकट, स्वाध्य संकट, नैतिक पतन आदिका सामना करने के लिए विज्ञान को हर एक क्षेत्र में आगे आना पड़ता है। भौतिक शास्त्र, रसायन, गणित, मनो-विज्ञान, जीवन विज्ञान, कृषि, चिकित्सा-विज्ञान आदि-विज्ञानकी सभी शाखाओ ने युद्धकाल में आश्चर्य जनक उन्नति की है। यदि तृतीय महायुद्ध शीघ्र शुरू न हुआ तो प्राप्त शांति काल में दुनिया इस उन्नति से लाभ उठा सकेगी।

नवीन शस्त्रास्त्र और गुप्तास्त्र

द्वितीय महासमर ने एक बात विशेष रूप से बतायी है और वह यह कि युद्ध में इस्तेमाल होनेवाले अस्त्रों के बारे में युद्धरत राष्ट्र उसके नावीन्यको प्रथम स्थान और भीषणता को दूसरा स्थान

देते हैं। उदाहरण के लिए, प्रथम महायुद्ध में जर्मनी ने अकेले जहरीली गैस पहले निकाली और इस्तेमाल की। द्वितीय महासमर में जहरीली गैस दोनों पक्षों के पास थी, पर उसे किसी ने इस्तेमाल नहीं किया और युद्ध समाप्त होने के बाद दोनो ओर के कई हजार टन वजन के जहरीली गैस के बम समुद्रार्पण करने पड़े। युद्ध रत राष्ट्रो मे नवीन अज्ञात अस्त्र ढूंढ निकालने की होड़ चलती है। द्वितीय महासमरमें अमेरिका '' के पीछे यानी एटोमिक बम के पीछे लगा रहा तो जर्मनी वी के पीछे। वी १ और वी २ ये दो ही अस्त्र जर्मनी निकाल सका, पर उन्होंने वैज्ञानिक जानकारी के बारे में जगत में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। ब्रिटेन में चर्चिल केवल २ ऊँगलियों से V बनाने में ही लगे रहे। यह उनका मनोवैज्ञानिक अस्त्र था और उसने ब्रिटेन को संभले रहने में बहुत मदद की, इस बात मे कोई संदेह नहीं।

प्रथम महासमर ने दुनिया को बमवर्षक विमान, टंक तथा लपटे फेकनेवाले यंत्र दिये। द्वितीय महासमर ने रेडियो नियंत्रित टंक, आशातीत गति से उड़ने वाले लड़ाकू वायुयान, रेडार, राकेट फेकनेवाली तोप, जल के भीतर गोताखोर जहाज का पता लगाने वाला यंत्र, उड़न बम, दूर मार अग्निबाण और परमाणु बम का पता लगाया। मानवी टारपीडो, आत्मघाती विमान जेबी गोताखोर आदि और कुछ इस महासमर की देनें है।

जर्मन गुप्तास्त्र

जर्मनो की नये नये और गुप्त शस्त्रास्त्रो की वैज्ञानिक प्रगति और तैयारी के जो रहस्य अब खुलते जा रहे हैं उनकी भीषणता देखकर दिल दहल जाता है। यदि युद्ध छ महीने और चलता तो

परमाणु वम की जोड़ के और उससे अन्य प्रकार के घातक कैसे कैसे अस्त्र जर्मनी निकालता इसकी कल्पना करना ही रोमांचक है। जर्मनी की हार के दो मुख्य कारण तो ये हैं ही कि उसने १९४० में ब्रिटेन पर आक्रमण नहीं किया और १९४१ में रूस पर व्यर्थ ही आक्रमण किया, पर इनसे भी अधिक महत्त्व का कारण यह है कि वह युद्ध के साधारण विमानों-तोपों आदि के उत्पादन की ओर वेपरवाह हो कर गुप्तास्त्रों के फेर में पड़ा। साधारण युद्धसामग्री के उत्पादन में कमी किये बिना जर्मनी यदि गुप्तास्त्र बनाने में अपनी शक्ति खर्च करता तो शायद उसकी हार असभव थी, पर संभव है कि जर्मनी के पास ऐसी साधन सम्पन्नता और विभिन्न देशों की जनता की सद्भावना ही न थी कि वह दोनो ओर—पर्याप्त साधारण युद्धसामग्री और गुप्तास्त्रों के उत्पादन की ओर—समान और सम्यक रूप से ध्यान देता।

जर्मनी के इन गुप्तास्त्रों की जो बातें ब्रिटेन-अमेरिका को मालूम हुईं वे तो अधिकतर प्रकाश में आ गयीं, पर रूस ने जिन पर अधिकार किया वे अभी तक अप्रकाशित ही है। बरलिन की जो बड़ी व्यायाम प्रदर्शन शाला (स्टेडियम) है उसके नीचे जर्मनी ने गुप्तास्त्रों के कारखाने वनाये थे। अंग्रेजो के वहाँ जाने के पहले रूसी वहाँ के सब शस्त्रास्त्र और सामान उठा ले गये थे। बहुत सी बातें तो जर्मनी ने गोताखोरों में जापान भेज दी थी। अमेरिका को अब उनका भी पता लग जायगा।

जर्मनी की सारी इमारत फासिस्ट (कंकरीटी) होने के कारण वह गिरी तब एकदम गिरी—एक एक कर उसकी मंजीलें या दीवारें नहीं गिरीं, इसलिए जर्मनी को अपने गुप्तास्त्रों या प्रचारित नवीन अस्त्रों का रहस्य छिपा रखने का अधिक अवसर नहीं मिला। फिर

भी जो कुछ थोड़ा समय मिला उसमें उन्होंने इसे छिपा रखने के काम में भी अपनी अथाह बुद्धिका प्रदर्शन किया ही। उन्होने अपने विमानों को अलग अलग कर उनके पुर्जे दूर दूर गाड़ दिये। यही नहीं, एक पूरा जेबी जंगी जहाज ही तोड़कर उन्होने उसके पुर्जे दूर दूर गाड़ दिये थे। इनको सब एक जगह कर उनका पूरा रहस्य जानने के लिए दो साल तक लग सकते हैं। जर्मनों ने अपने कारखाने शहरों के टाउनहालों के नीचे बनाये थे। परमाणु बमसे इन पर अधिक असर न होता। एक पानी कल को भी तोड़ कर जर्मनों ने उसके पुर्जे उस शहर के निवासियों में बाँट दिये थे।

एसेन के क्रुप कारखाने के रहस्य तो जर्मनों ने ऐसे अजीब ढंग से छिपाये थे कि क्या कहा जाय। आक्सी एसीटिलीन ज्वाला से दो चार दिन प्रयत्न करने पर भी जर्मनो की वह सदूक (सेफ) खुल नहीं सकी। वह संदूक बाहर कंकरीट से चारों तरफ से ढंक दी गयी थी। संदूक बहुत भारी थी और क्रुपके बंगले में लकड़ी की दीवाल के अन्दर बड़ी तारीफी से छिपाकर रखी गयी थी। दीवार के बाद अन्दर ब्रांजका दरवाजा था। इसके बाद पीतल की मोटी चद्दर थी। इसके बाद इस्पात की मोटी चद्दर, तांबेकी मोटी चद्दर और फिर इस्पात की एक मोटी चद्दर थी। इन सबके ऊपर मोटी कंकरीट की दीवाल थी।

बहुत से जर्मन रहस्य तो उनको खोज निकालने वाले वैज्ञानिको ने अपनी बुद्धि की तारीफ और शान बघारने के जोश में बता दिये। हैनोवरके 'ब्लाइंड' कारखाने में जर्मनो के सब से अधिक महत्त्व के अस्त्रो के रहस्य का पता ब्रिटिश वैज्ञानिकों को लगा। बहुत से कारखानदारों ने अपने कागज़ पत्र तो जला दिये थे, पर जलाने के पहले इनकी माइक्रो फिल्मे बना ली थीं। जब उनको

विश्वास हो गया कि नाजी पार्टी अब नहीं रही तब ये फिल्में उन्होंने ब्रिटेन को दे दी।

जर्मनों ने राकेट संबंधी अपने बहुत से रहस्यों को तो लुबेक के पास कब्रगाह में ६ कब्रों में बड़ी तारीफी से गाड़ दिया था। यहां तक कि कब्रों में गाड़े गये नकली शवों के नकली नाम भी रजिस्टर में दर्ज थे। पत्नी से भेंट कराने के मिले आश्वासन के लालच से एक जर्मन वैज्ञानिक ने यह रहस्य मित्रों को बता दिया।

जल-स्थल-आकाश युद्ध

अब हम द्वितीय महासमर में जल, स्थल और आकाश युद्ध के शस्त्रास्त्रों में हुए क्रान्तिकारी परिवर्तन के बारे में एक-एक अध्याय मे लिखने का प्रयत्न करेंगे।

स्थल-युद्ध—यद्यपि टङ्कों का आविष्कार सबसे पहले केवल २५-३० वर्ष पूर्व ही प्रथम महासमर में हुआ था, और टङ्क केवल दो मील फी घण्टे की गति से चलते थे, पर द्वितीय महायुद्ध में स्थल-युद्ध वस्तुतः टङ्क युद्ध था। टङ्क को भूमि पर चलनेवाला जहाज ही समझना चाहिये। १९४४ में तीस मील की रफ्तार से भागनेवाले टङ्क बन चुके थे। रेडियो-नियन्त्रित टङ्क भी बने हैं, चलाने के लिए आदमियों की आवश्यकता नहीं। अब तो टङ्क सेना भी ले जाते हैं। आग उगलने वाले टङ्क, सुरङ्ग बिछाने वाले टङ्क और जल तथा स्थल दोनों पर चलने वाले टङ्क बनाये गये हैं। जर्मन २०० टन वजन का भी टङ्क बनाना चाहते थे। जर्मनों ने भी हार के पहले जल-स्थल गामी टङ्क बना लिये थे। उन्होंने कुछ ऐसे भी टङ्क बनाये थे जिनमें इधन बहुत
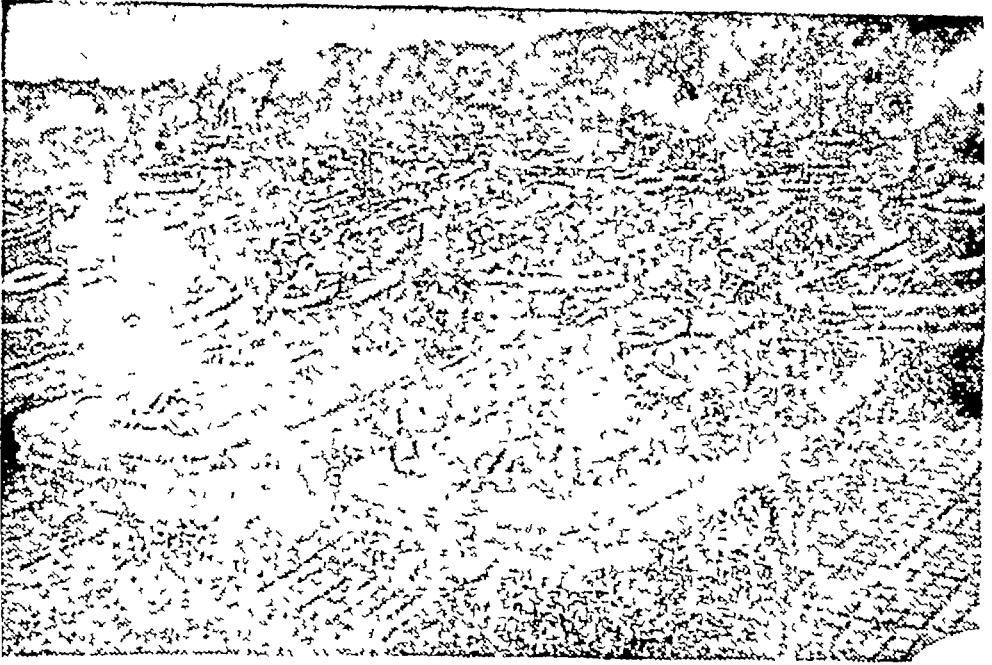
वैलेंटाइन डी० डी० (डूप्ले ड्राइव) तैरने वाले ट्रक

ही कम खर्च होता था। जर्मन टङ्को के अधिकतर रहस्य ब्रिटेन को नही मिले, वे रूस या अमेरिका के हाथ पड़े। टङ्क-युद्ध के साथ उसका प्रतिकार करने के उपाय भी आये। टङ्क फंसाने वाली खाइयाँ, तार के जाले आदि बनाये गये। रूसियो ने एक नये तरह का रक्षा-जाल (वेव-डिफेन्स) बनाया जिसमें टङ्को द्वारा अभेद्य दृढ़ स्थानों के बीच टङ्कों को नष्ट करनेवाली सुरङ्गे लगाकर पंक्तियाँ बनायी जाती थीं। अमेरिका ने टङ्क विरोधी राकेट बम छोड़ने वाली बाजूका नलिका बनायी थी। इनमें राकेट बम बिजली के बटन से छूटता है।

प्रथम महायुद्ध में जर्मनो ने अपनी 'बिगबर्था' तोप से ७५ मील दूर पेरिस पर गोलाबारी की थी। इस महायुद्ध में उन्होने, गरबि·

बर्था' तोप बनायी जो १५५ मील तक गोला फेंक सकती थी। जर्मनों ने ऐसे गोले बनाये जिनमें राकेट भी लगे थे। कुछ दूर तक
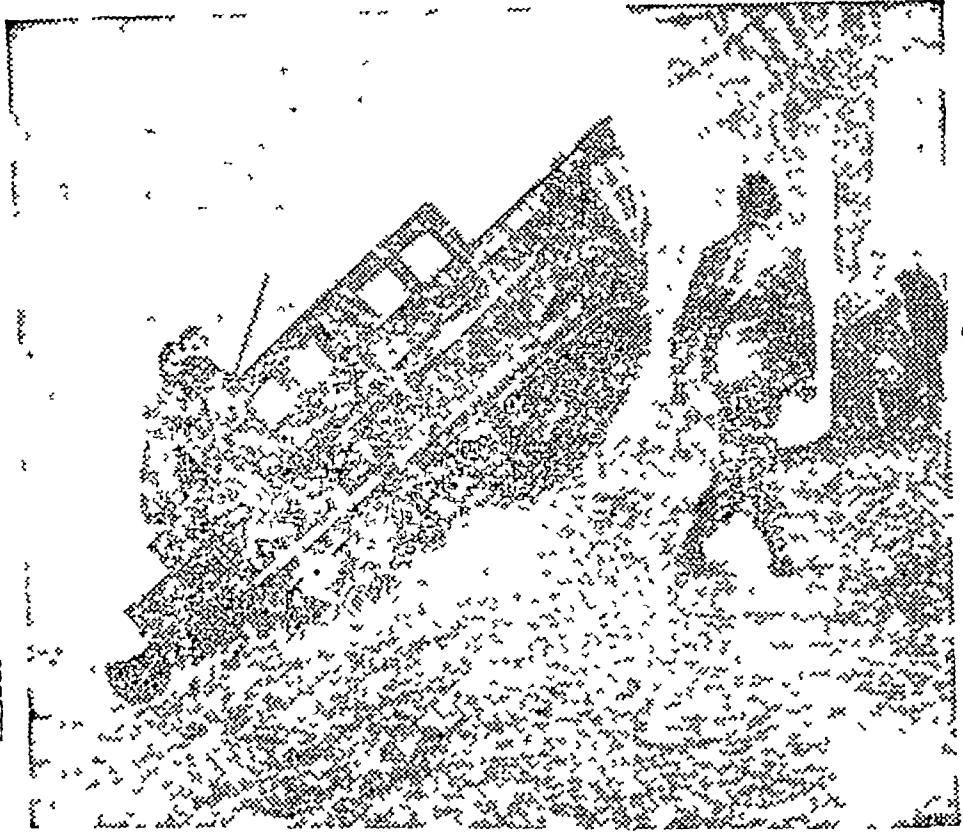
अमेरिकन जल-स्थल गामी 'वीसेल' सामग्री वाहक गाड़ियाँ

जाकर जब गोलों की गति धीमी हो जाती तब ये राकेट काम करने लगते और उसको और नयी गति देते। दुनिया की सबसे बड़ी तोप जर्मनों ने ही बनायी थी। यह रेल लाइन पर ढोयी जाती थी और ३२ इञ्ची थी। ८ टन वजन के गोले इसमें से

जर्मनी में एसेन के क्रुप कारखाने में बनने वाली एक अजस्र तोप

छूटते थे। जर्मनों ने इसका सेवास्टोपोल की लड़ाई में उपयोग किया था। ब्रिटेन ने भी ३०० पौण्ड वजन के गोले फेंकने वाली ६.२ इञ्च नली वाली 'हाविट्ज़र' नाम की तोपे बनायी थीं। एक वैज्ञानिक ने टेढ़ी नलीवाली राइफल का आविष्कार किया ताकि खाई से सिर निकाले बिना ही गोली चलायी जा सके। नयी-नयी मोटरें, लारियाँ और मोटर-साइकिलो से काम लिया गया। गोलियों से न फटनेवाले टायर बनाये गये ('रसायन विज्ञान' देखिये।) सैनिकों को पहनने के लिए प्लास्टिक का बख्तर बनाया गया। इससे गोली का बचाव तो नहीं होता, पर गोला छूटने से जो छिटपुट आग इधर-उधर गिरती है उससे बचाव होता है। पेट्रोल के अभाव में कोयले और प्रोडूसर गैस से मोटरें चलाने का तरीका ढूँढ़ निकाला गया। मोटरो पर तो चलते फिरते कारखाने, जलकल और रक्तबंक बनाये गये। खाई खोदनेवाली मशीनें बनायी गयीं। जल और स्थल पर चलनेवाली अमेरिकन 'जीप' मोटरे इस युद्धकी विशेपता है। ये मोटर गाड़ियाँ ११ फुट लम्बी, ५ फुट चौड़ी और ३ फुट ऊँची होती हैं। वजन २२०० पौण्ड, गति ६५ मील, ६० अश्व-शक्तिका इञ्जन, नदियो में बालू पर और दलदल मे तथा पहाड़ी जमीन पर भी चलती है। इस पर छोटी तोप भी चढ़ सकती है और यह धुएँ का परदा भी खड़ा कर सकती है। रेगिस्तान के युद्ध में 'ई बोट आव डेजर्ट' नाम की वख्तरदार मोटरे भी चलायी गयी।

जीप गाड़ी पहले-पहले मोटर साइकिलो की जगह काम में लायी जाने लगी, पर बाद में हर काम के लिए यह अद्भुत साबित हुई। शान्ति काल में पुलिस और सरकारी अधिकारियो को यह बहुत काम देगी। छोटी-सी ४ पहिये की होने के कारण यह
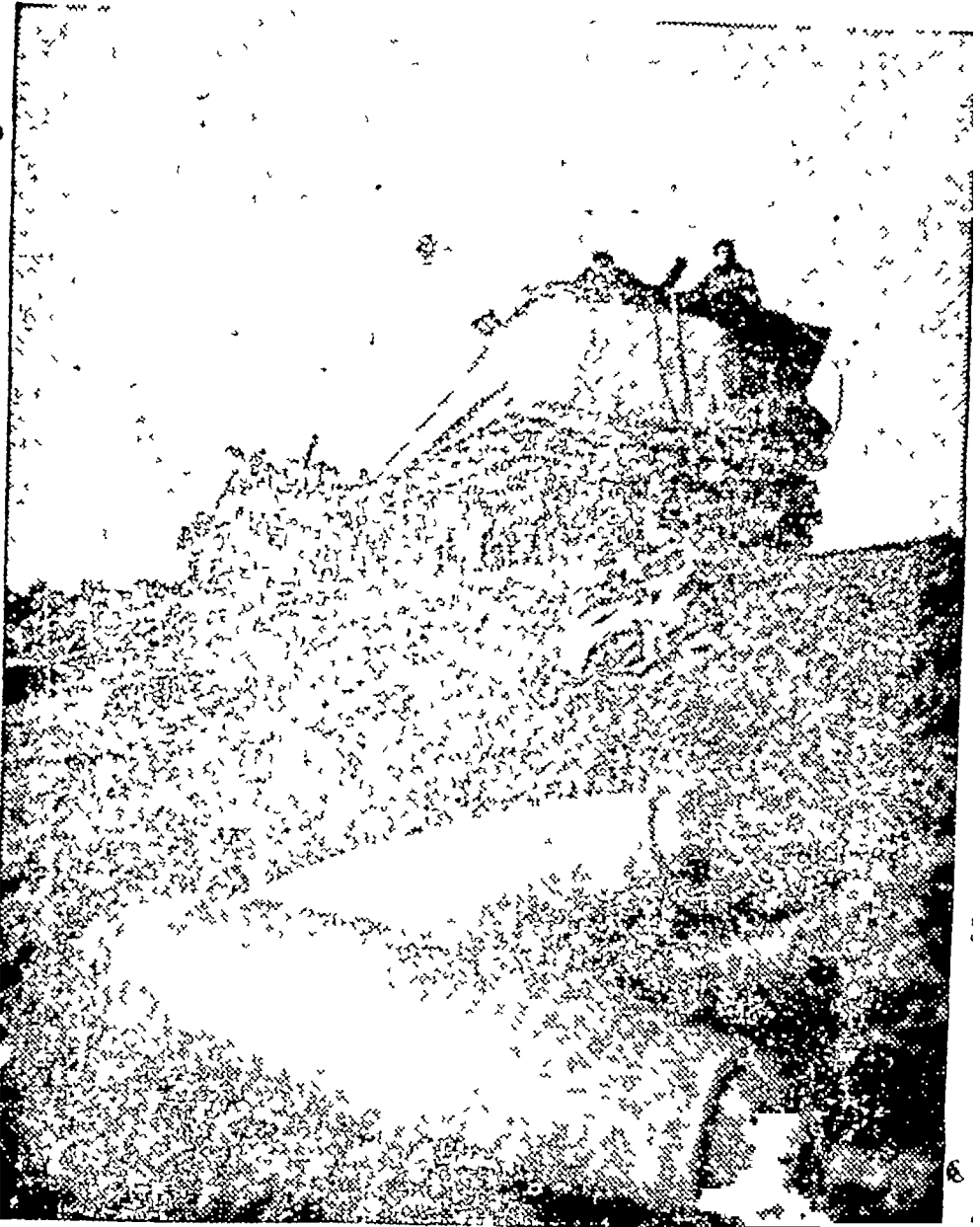
'शर्मन' डी० डी० तैरने वाले टंक राइन नदी में उतारने के पहले 'फुलाये' जा रहे हैं। दबायी गयी हवा भरी 'बोतलें' आगे पड़ी हैं।

घूमती बहुत जल्दी है, ७५ मील की तेजी से भाग सकती है। इतनी हलकी होती है कि चार आदमी आसानी से उठा लेते हैं, छोटी इतनी होती है कि ४-६ जीप गाड़ियाँ एक विमान में भेजी जा सकती हैं। जीप गाड़ी एक बड़े रेल के माल के भरे डब्बे को तार से बाँध कर आसानी से खींच ले जाती है।
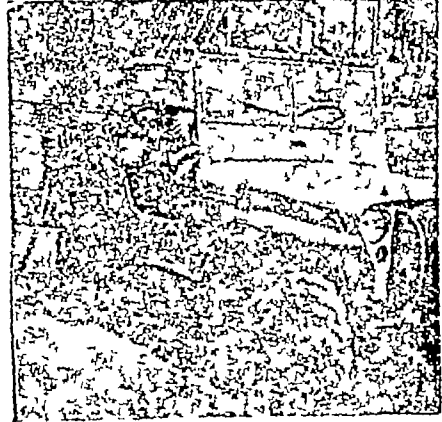
द्वितीय महासमर में यद्यपि जहरीली गैस का प्रयोग दोनों तरफ से नहीं किया गया था फिर भी उसके प्रतिकार की तैयारी खूब हुई थी। तरह-तरह के नकाबों का निर्माण किया गया। जर्मन हार के बाद पता लगा कि जर्मनों ने एक ऐसी गैस बनायी थी जो आज तक की सब गैसो से अधिक भयङ्कर थी। ब्रिटेन में युद्धारम्भ के समय जितनी गैस-विरोधी तैयारी थी उतनी बाद के वर्षों में नहीं थी और जर्मनो ने उक्त गैस छोड़ी होती तो ब्रिटेन में आफत हो गयी होती। पर कहते हैं कि और सब लोगो के दबाव की परवाह न कर हिटलर ने ही उसे छोड़ने की अनुमति नहीं दी। उस गैस की एक बूँद एक आदमी को २० मिनट में जान से मार डालती, पिछले युद्धमें इस्तेमाल हुई मुस्टार्ड गैस से २०गुनी अधिक भयङ्कर थी। एक बूँदसे शरीरका कोई भी भाग निर्जीव हो सकता था। जर्मनों के पास इसके १० हजार टन वजन के बम और गोले तैयार थे। यह जेट विमानों और रेडियो राकेटों से ब्रिटेन पर फेंकी जा सकती थी।

अमेरिकनों ने गहरी खुजली पैदा करनेवाली एक जहरीली गैस बनायी थी। ब्रिटेन में जहरीली गैस के ५००-५०० पौण्ड वाले
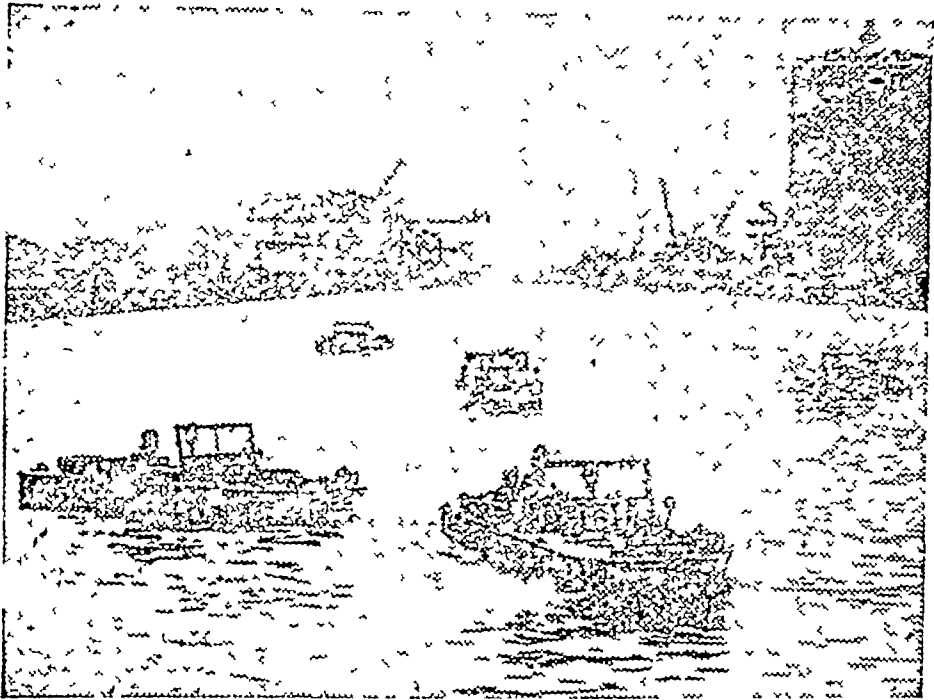
तैरने वाली अमेरिकन 'जीप' मोटर गाड़ी। फोर्ड के कारखाने में यह बनी है—वजन एक चौथाई टन, ४ पहिये, ५ आदमी बैठ सकते है।

बमो के कई भण्डार थे और युद्ध समाप्त होने पर यह समस्या उठ खड़ी हुई कि इन्हें नष्ट कैसे किया जाय। इनका और कोई उपयोग नहीं होता। सोचा गया कि महासागर में ले जाकर इन्हें डुबा दिया जाय, पर इसमें भी खतरा था। सहारा में ले जाकर गाड़ने की भी सोची गयी, पर इतनी गाड़ियाँ या विमान कैसे आवें। यह भी समझा गया कि इस गैस से रङ्ग धोनेवाले ब्लीच या

कृमिनाशक एण्टी-सेप्टिक बनाये जायँ, पर इसमें बहुत खर्च

एक 'जीप' गाड़ी हवाई जहाज पर लादी जा रही है।

पड़ता। रसायनों से गैस को बेकार बनाना भी बड़ा समय लेता, १ बम के लिए १ दिन।

शत्रु को धोखा के देने के लिए इस युद्ध में धुएँ के परदे का भी खूब उपयोग हुआ। कृत्रिम रूप से कुहरा पैदा करने की बात तो बहुत से लोगों की समझ में आ सकती है, पर नैसर्गिक कुहरे को नष्ट करने के लिए युद्धकाल में 'फिडो' नाम के एक नये यन्त्र का आविष्कार किया गया। गैसोलीन के भाप को जलाकर उसकी भीषण गरम ज्योति से कुहरा हटा दिया जाता था और विमानों के आने जाने के लिए रास्ता साफ किया जाता था। १९४४ के

दिसम्बर में कड़ाके की सर्दी और घने कुहरे से लाभ उठा कर रुण्डस्टेड ने जो आक्रमण वेलजियम में किया था उसको इसी

बारूद भरे कनस्टरों में पलीता लगा लगा कर धुएँ की दीवारें खड़ी की जा रही है।

फीडो के कारण विफल बनाया जा सका था। शान्ति काल में इसका बहुत उपयोग होगा।

युद्ध काल में गुफाओ (Fox holes) या खाइयो या विना बिजली की बारीको मे छोटी-मोटी चीजे गरम करने, हवा गरम करने और चाय काफी बनाने के लिए कई तरह के उठौवा हलके

स्टोव बनाये गये। इनमें कोलमैन का स्टोव सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। एक कप पेट्रोल में यह दो घण्टे तक जलता है।

२६० सैनिकों को ढोने लायक बड़ी बसें बनायी गयीं।
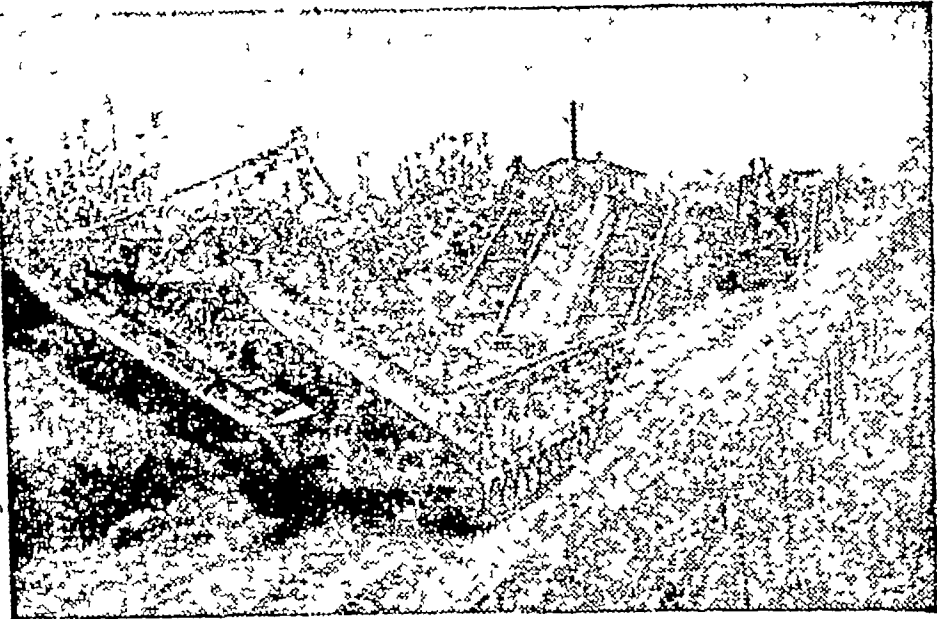
चलने वाले पुल

जहाजों से सीधे रणक्षेत्र तक मीलों पाइप से तेल और पेट्रोल भेजा गया। एक दिन में ३० मील पाइप लगाया जाता था।

जलयुद्ध—द्वितीय महायुद्ध में कई नये तरह के जहाजों का उपयोग हुआ। वायुयान वाहक जहाजों का नाम इसमें लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त सुरङ्ग बिछाने-उठानेवाले जहाज, रक्षक पोत, विध्वंसक पोत, क्रूजर, युद्धपोत आदि जहाजो का पूरा उपयोग किया गया। पर दोनों ओर के दिमाग की सारी ताकत

गोताखोरों और टारपीडों के सुधार की ओर लगायी गयी।

गोताखोर कहलाने लायक पहला जहाज १७७६ में बनाया
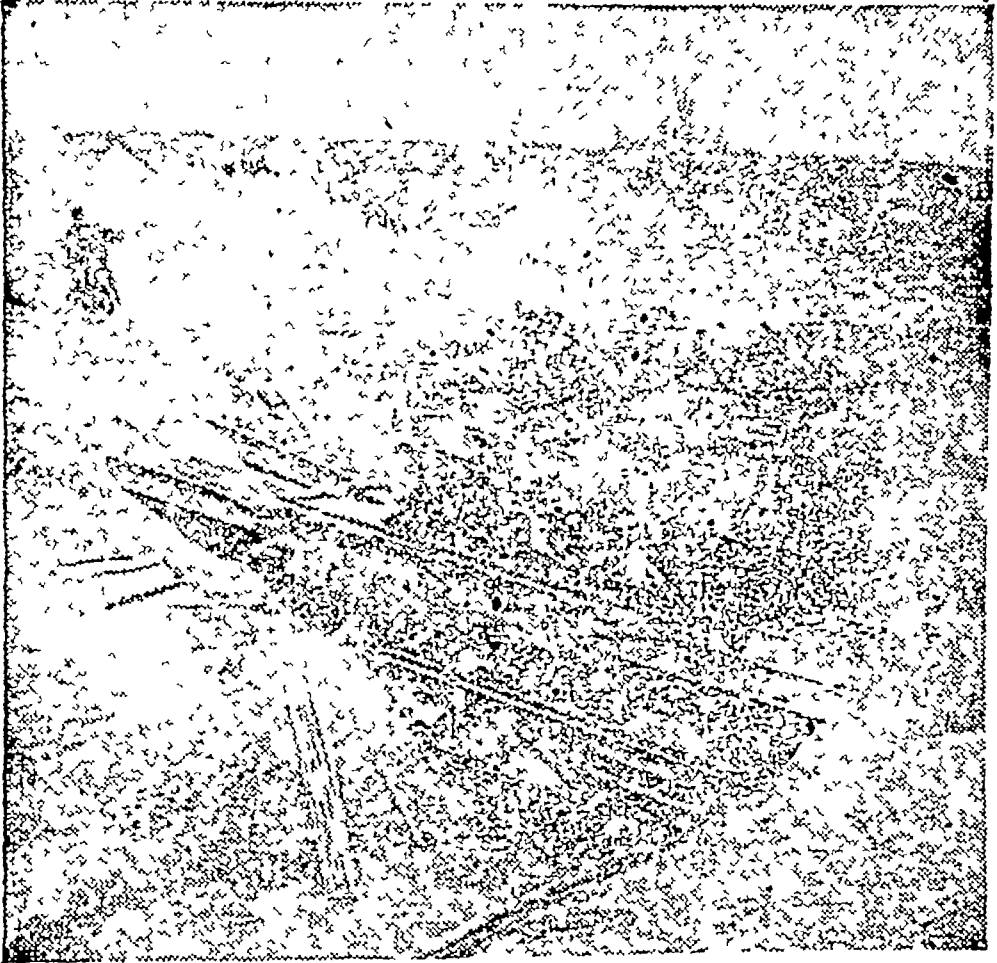
चलने वाले पुल

गया था। तबसे कोशिश यही रही कि गोताखोर को कभी ऊपर आने की जरूरत ही न पड़े। द्वितीय महायुद्ध में जर्मन करीब-

करीब इस लक्ष्य तक पहुँच गये थे। २१ मेल का नाजी गोताखोर ९।१० समय समुद्र के नीचे रहा और मजा यह कि पानी के अन्दर यह अधिक तेजी से चलता था। साधारणतः गोताखोर की पानी-के अन्दर की गति ऊपर की गति से आधी रहती है। पर जर्मनों ने माडल २१ में पानी के अन्दर बिजली की तेज बैटरियो से १८ नाट की गति प्राप्त की। ४५ दिन के एक दौरे मे २१ मेल का एक जर्मन गोताखोर केवल ४ दिन पानी के ऊपर आया था। जर्मनों ने ऐसे ११६ गोताखोर बना लिये थे, पर कुछ खराबियो के कारण वह उनका उपयोग न कर सके।

जर्मनोका एक आश्चर्य-जनक गुप्तास्त्र उड़नेवाला गोता-खोर था। इसमें वे ऐसे पङ्ख लगानेवाले थे कि उसी से उड़ने का और डुबकी लगाने का काम ले सके। जर्मनो का खयाल था कि इसको पूरा होने में १०-१५ वर्ष लग जायँगे।

साधारण जर्मन गोताखोर में एक माडेल डीजेल इञ्जिन होता है। ये ११००० मील तक भ्रमण कर सकते है। समुद्र के अन्दर से गोताखोर से तेल निकलने के कारण विध्वसक जहाज इनका पता ले लेते थे। इसलिए जर्मनो ने यह युक्ति निकाली कि जब गोताखोर डुबकी लगाकर चले तो हाइड्रोजन और आक्सिजन का उपयोग करें। (हाइड्रोजन पर-आक्साइड (H_2O_2) अस्थिर रसायन है। यह हमेशा पानी (H_2O) और आक्सिजन (O) देता रहता है। इस विघटन कार्य में बहुत सी शक्ति भी प्रेषित होती है। इस शक्ति का उपयोग जर्मन जहाज चलाने में और बाद में

वी १ और वी २ छोड़ने में भी करते रहे। कहते हैं कि इस 'इग्नोलीन' इंधन की शक्ति पेट्रोल से ८०० गुना अधिक रही। इन्हीं की सहायता से जर्मनों ने आखिरी दिनों में जेट से चलने-वाले अकल्पनीय २५ नाटकी गतिवाले एक गोताखोर की योजना बनायी थी। मेसरश्मिट १६३ विमान में और इञ्जिन चलाने और विस्फोट कराने में भी इस इंधन से काम लिया जाने वाला था। यह हाइड्रोजन पर-आक्साइड का पानी में मिक्स्चर था।

जापानने बहुत सस्ते और एक बारमें ६०० मील जानेवाले जेबी गोताखोर बनाये थे। ये १८०० फुट गहराई तक नीचे जा सकते थे। साधारणतः ३-४ सौ फुटसे अधिक गहराई में गोताखोर नहीं चल सकते थे। जापानने टारपीडो ले जानेवाली आत्मघाती नौकाएं भी बनायी थीं। छोटे जापानी गोताखोरों में केवल दो ही चालक रहते थे। टारपीडो चलाकर जहाज नष्ट किये जाते थे। गोताखोर की छोटी नौकाओं की नाककी जगह टारपीडो बैठाया जाता था। और यह जहाज से जाकर टकराता था और विस्फोट से डुबाता था।

जर्मनोंने जलके रंग में छिप जानेवाले गोताखोर भी बना लिये थे। चार दिन में उन्होंने अनेक गोताखोर बना डाले, पर इनके उपयोग के पहले ही उनकी हार हो गयी, अन्यथा ये बड़े भयंकर साबित होते।

टारपीडो मोटर-बोटोंसे भी बड़ा काम लिया गया। गोताखोरों से और इनसे समुद्र के अंदर सुरंगें बिछाने का काम लिया जाता है। टारपीडो बोट टारपीडो के अलावा गहराई में फूटनेवाले बम, मशीनगनें लेकर ५० मील प्रति घंटे की गति से दौड सकते हैं। १ हजार मील तक एक दौरे में जा सकते हैं।

गोताखोर के प्रतिकार के लिए डेप्थचार्ज, हाइड्रोफोन तथा हेजहाग गोलाबारी का उपयोग होता है। गोताखोर में सूर्य की रोशनी के लिए 'कृत्रिम धूप' पैदा की जाती है।

जर्मनोने आखिरी दिनो में एक ऐसा टारपीडो बनाया था जो ८० मील दूर जा सकता था और इसके सामने एक ऐसा आवाज का यंत्र बनाया गया था कि अपने लक्ष्यकी ध्वनि सुनकर वह उसके पीछे जाता था। टारपीडो से बचने के लिए जहाज टेढ़े मेढ़े रास्ते से चलाये जावे हैं इस लिए जर्मनोंने टेढ़े मेढ़े रास्ते पर चलनेवाले टारपीडो बनाये थे। इसमें जहाज किसी हालत में बच ही नहीं सकते थे। जर्मनोने एक ऐसा ग्लाइडर बनाया था जो विमान से छूटता था और छूटने के बाद खुद एक टारपीडो छोड़ता था ताकि जहाज की विमान विरोधी गोलाबारी से विमान को पाला ही न पड़े !!

जर्मनीने द्वितीय महासमर में कुल ११५० गोताखोर बनाये जिनमें से आधे डूब गये।

ब्रिटेनने २१ फुट लंबे गोताखोरो के 'मानवी टारपीडो' बनाये। यह टारपीडो साधारण टारपीडोकी तरह होता है। उसका संचालन पनडुब्बे की पोशाक पहने हुए दो वीर करते हैं। ये लोग दोनों तरफ पैर लटकाये बैठे रहते हैं और अपने शिकार की ओर बढ़ते समय केवल उनके सिर पानी के ऊपर रहते हैं। अपने लक्ष्य के निकट पहुँच कर ये लोग पानी के नीचे चले जावे हैं और टार-पीडो का अगला विस्फोटक भाग अलग करके शत्रु के जहाज के पेंदे में लगा देते हैं। इसके उपरांत बारुदी सिरे पर निश्चित समय पर दगनेवाला पलीता लगाकर मृत्यु से खेलने वाले ये वीर भाग निकलते हैं।

ब्रिटेनने एक और तरह के 'मेढक वीर' तैयार किये थे। यूरोप में मित्र जहाज आकर सेना न उतार सके इसलिए जर्मनोंने अतलांतक तटपर समुद्र के अंदर लोहेकी बड़ी बड़ी (२-२ टन की) कीलें ठोक दी थी और चद्दर खड़े किये थे और विस्फोटक भर दिये थे। इन्हें नष्ट करने के लिए कुछ वीर तैयार किये गये। इन्हें फ्राग मेन या मेढक वीर कहा गया। ये वीर खास तरह की पोशाक पहने रहते थे और इनके पीछे विस्फोटकों से भरी हुई हलकी डिंजियां बंधी रहती है। तट के पास समुद्र के नीचे जाकर डी-दिवस के पहले इन वीरों ने ३००० जर्मन कीलें नष्ट की थी।

जर्मनोंने बिजली से नियत्रित होनेवाला एक टारपीडो बनाया था। यह मार की दिशा बदल सकता था, समुद्र के अंदर गहराई बदल सकता था और चाहे तो समुद्र के अंदर से ऊपर छलांग मार कर फिर डूब सकता था।

पहला गुप्तास्त्र–चुम्बक सुरंग

जर्मनी ने द्वितीय महायुद्ध में पहले-पहल चुम्बक सुरंगों का इस्तेमाल किया। यह उसका पहला गुप्तास्त्र था। जहाज पास आने पर ये सुरंगे चुम्बकके आकर्षण के कारण अपने आप जाकर जहाजसे टकरा जाती थीं। इससे व्यापारी जहाजों का बहुत नुकसान होने लगा। विस्फोट हुई सुरंग मिले बिना उसका काट बनाना भी असंभव था। अन्त में २४ नवम्बर १९३९ को एक ऐसी सुरंग मिल गयी। ब्रिटिश-वैज्ञानिकों ने इसपर एक महीने के अन्दर उसका काट तैयार कर लिया। वे सुरंगनाशक जहाजो के पीछे के हिस्से में दो लम्बे बिजली के तार लपेटते थे। इससे जो चुम्बकक्षेत्र तैयार होता था वह इतना ताकतवर रहता था कि

१० एकड़ आसपास के क्षेत्र की सुरंगें अपने आप फट जाती थी। इस काट के कारण समुद्री-मार्ग बहुत शीघ्र साफ होने लगे।

पर इसके बाद जर्मनोने 'ध्वनि टारपीडो' बनाये। इसमें जहाज के पंखों की आवाज सुनकर माइक्रोफोन में ऐसा दिशा बदलनेवाला यन्त्र लगा था कि जहाज पास आते आते यह टारपीडो खुद उसके पास जाकर टकरा जाता था। इसका पूरा पूरा काट मित्र-राष्ट्रों को नहीं मिल सका था। जर्मनो ने नदियों और भूमिपर भी सुरंगो के जाल बिछाये। विमानो से भी सुरंगें फेकी गयीं। समुद्र में बिछी सुरंगो का पता लगाने के लिए 'माइन डिटेक्टर' निकाला गया। गोताखोर की आंखे पेरिस्कोप में अत्यन्त महीन निशान बनाने के लिए ब्रिटेन ने मकडी के जालोका उपयोग किया।

रेडियोसे छूटनेवाली सुरंग बनायी गयी है। इसके अन्दर रेडियो रिसीवर रहता है और बिजली से विस्फोट होता है। दूर से रेडियो की लहरे पैदा कर उसमें विस्फोट किया जा सकता है। २० मील की दूरी तक पानी के अन्दर सुरंग भी भड़काये जा सकते हैं।

परमाणु-बम से बचने के लिए ब्रिटेन में अब ऐसे जहाज बननेवाले हैं जो १२० मील प्रति घंटे की चाल से चलेंगे। इन का नाम 'हाइड्रोफिन' रखने का विचार है। विमानो के दो इजन ३००० अश्व शक्ति के इसमें लगाये जायगे।

टारपीडो छूटने पर जो धुआ निकलता जाता है इससे वह जल्दी दिखाई दे जाता है। इसके लिए अमेरिका मे बिजली से चलनेवाले टारपीडो बनाये गये। इन टारपीडो ने ३०० जापानी जहाज डुबाये थे।

डुबे हुए जहाजों के नाविकों को बचाने के प्रयत्न में भी बहुत सुधार किया गया। छेद न हो ऐसे मिश्रणों के लाइफबोट बनाये गये। लाइफबोटों में खाना-पानी और टार्च रखने का इंतजाम किया गया। डूबे हुए जहाजों को निकालने के लिए तैरनेवाले 'डकों' और दैत्याकार आइसटांगों का उपयोग किया गया। गैस से जहाज चलाने की भी कोशिश सफल हो गयी है। समुद्रों में मीठा पानी न मिलने से बड़ा कष्ट होता है।

द्वितीय महासमर से पहले समुद्र का पानी केवल भपके से पीने योग्य बनाया जा सकता था। भटकने वाले उडाकों और जल सैनिकों के खयाल से समुद्र के पानी को पीने योग्य बनाने की कोई रासायनिक विधि ढूंढ निकालना आवश्यक था।

ब्रिटेनने यह काम किया और उधार पट्टे के बदले की व्यवस्था के सिद्धान्तो के अनुसार अनुसंधान का फल अमेरिका को बता दिया और उन्होंने उसे अपनी आवश्यकता के अनुकूल बना लिया।

मनुष्य को प्यास तब लगती है जब उसके शरीरके अन्दर तरल पदार्थों में क्षारों की अधिकता हो जाती है। हमारे मूत्रपिंड या गुर्दे दो प्रतिशत क्षार वाले पानी को तो शरीर के बाहर निकाल सकते हैं पर इससे अधिक क्षार वाले पानी को बाहर नहीं निकाल सकते। अतः समुद्र का पानी पीने से मनुष्य की प्यास घटने के बदले बढ़ती है। जिस रासायनिक पदार्थ के योग से समुद्र का पानी क्षार-रहित और पीने योग्य बनाया जाता है उसे जीओलाइट कहते हैं। इसका जो यंत्र बनकर तैयार हुआ है वह संदूक जैसा होता है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई तीन-तीन इंच और ऊंचाई ४½ इंच होती है। बाद में एक और इतना छोटा यंत्र बनाया गया जितना पचास सिगरेटोंवाले टीन का डिब्बा। इसके द्वारा भी समुद्र

क पानी से तीन पाइंट अर्थात् लगभग दो सेर अच्छा पीने योग्य पानी तैयार कर लिया जा सकता है।

इस अनुसंधान में कितनी ही नयी बातें ज्ञात हुई हैं जिनका भविष्य में बहुत उपयोग होगा।

डूबे हुए जहाज के आदमियों को बर्फीले पानी में भी गरम रखने के लिए एक ऐसा सूट बनाया गया है जिसके अंदर न हवा जा सकती है और न पानी। यह नाइलन का बना है।

जहाजोंपर २४ घंटे के अंदर लगाये जाने वाले अतिरिक्त डेक बनाये गये थे ताकि विमान, नावें, इञ्जिन आदि पुर्जे अलग किये बिना ले जाये जा सकें।

पानी के अंदर लोहे को आग से काटने वाला एक यंत्र बनाया गया है। इससे धातु ६ से १० हजार डिग्री फाहरनहाइटतक गरम किया जा सकता है। इसके बाद आक्सीजन गैस की तेज धारा निकलती है और धातु को काटती जाती है। ५० फुट समुद्र के नीचे ½ इञ्ची इस्पातकी प्लेट यह १ मिनट में ५२ इञ्च काट देता है। डूबे हुए गोताखोरों के आदमियों को मुक्त करने में इससे बड़ी मदद मिलेगी।

आकाश-युद्ध—द्वितीय महासमर शुरू होने के पहलेही यह स्पष्ट था कि इस युद्ध में अधिकतर जोर आजमाइश आकाश में होगी। इसी लिए सब देशों में हवाई जहाजों से बचने की शिक्षा दी जा रही थी—अंधाकुप्प या ब्लैक आउट के तरह तरह के प्रयोग हो रहे थे। नयी नयी तरहकी चोर बत्तियाँ (सर्च लाइट) बनायी जा रही थी। हवाई जहाजों का सामना आकाशमें लड़ाकू विमानो से और जमीनपर तोपों और विमान विरोधी बंदूकों की गोली बारी से किया जाता है। युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में ब्रिटेन के पास

दोनो की कमी थी, इसलिए उसने रेडार (रेडार अध्याय देखिये) बनाया और उससे उसकी बहुत कुछ रक्षा हो गयी। इसी बीच मित्रो ने अपने कारखानो में श्रेष्ठ वैज्ञानिक लड़ाकू विमान तैयार किये। बम वर्षक, लड़ाकू, माल और फौज ढोनेवाले आदि कई तरहके विमान बनाये गये। बम वर्षको में सुपर फोर्ट्रेस (महादुर्ग) या बी० २९ मित्रों के सबसे बड़े और आधुनिक विमान थे।

तरह तरह के लडाकू विमान भी बनाये गये। इसके बाद एक ही विमान से लड़ने और बम बरसाने का कार्य लिया गया। ऐसे स्कूआ नाम के बम-वर्षकों का युद्ध पोतो पर व्यवहार किया जाता है। ब्रिटेन ने 'संडरलैण्ड' नाम का एक विशाल सेना वाही जहाज बनाया जो चार जीप मोटरें और छोटे टंक भी ले जा सकता है। हलके सामान ढोनेवाले एक पखी विमान भी बनाये गये। जल-स्थल दोनो पर उड़ने-उतरनेवाले विमान बनाये गये।

जर्मनो ने मेसरश्मिट १०६ नाम के हवा मे ६ मील ऊपर सब-स्ट्रेटोस्फीयर में उड़ने और छोटे-छोटे बम ले जानेवाले लडाकू विमान बनाये। सब-स्ट्रेटोस्फीयर से यात्रियो को ले जानेवाले विमान भी बने। अधिक से अधिक गोलियाँ दागने की शक्ति मे उन्नति की गयी। मित्रो का वोइङ्ग बी २८ एक मिनट में ८०० गोलियाँ दाग सकता था। उनका न्यू ब्रिस्टर फाइटर १०० टनका विमान था और १०० यात्रियो को लेकर १२०० मील एक उड़ान मे यात्रा कर सकता है। मासकिटो बमवर्षक ४०० मील की गति से भूमि से केवल १६—२० फुट ऊँचाई से उड़ सकते थे। माल ढोनेवाले लडाकू विमान भी बनाये गये। जंगल की लड़ाई के लिए विशेष प्रकार के विमान बनाये गये। थंडर नाम का एक

विमान बनाया गया जिसमें ५ केलिबर की ८ मशीनगनें ५ इंची तीक्ष्ण गतिवाले १० अग्निबाण और ५—५ सौ पौंड के दो बम रहते थे। एक ही आदमी इसमें बैठता था। गति, उड़ान, बोझ और उड़ने की क्षमता बढ़ाने के लिए विमानों में उत्तरोत्तर प्रगति की जाती रही। इन्ही सब का परिणाम महादुर्ग है।

विशालकाय महादुर्ग विमान

१९४४ के प्रारंभ में अमेरिकन इञ्जीनियरों ने एक अति विशालकाय बम वर्षक बनाया। इसका नाम महादुर्ग (सुपरफोर्ट्रेस) रखा गया। लम्बा और पूछ ऊपर की ओर होने के कारण यह बड़ा शानदार देखने में होता है। इसके बनने के पहले उड़न दुर्ग (फ्लाइग फोर्ट्रेस) सबसे बड़े बिमान समझे जाते थे, पर महादुर्ग उड़नदुर्ग से वजन में दूने होते हैं। महादुर्गों का रणक्षेत्र का नाम बी २९ था। इसके पंखों की लंबाई १४१-' फुट, विमान की लबाई ९८ फुट और ऊँचाई २७ फुट थी। उड़नदुर्ग में ये आकड़े १०३ फुट ९ इंच, ७४ फुट ९ इञ्च और १९ फुट १ इञ्च होते हैं।

बम ले जाने में इस विमान के निकलने के पहले लँकास्टर ब्रिटिश विमान का नम्बर था जो ८ टन वजन के बम ढो सकता था। महादुर्ग और लिबरेटर की उड़ान की मार २०००—२५०० मील है। महादुर्ग ३०० मील की गति से और इतनी अधिक ऊँचाई से उड़ सकता था कि विपक्ष के युद्धकोका वहाँ पहुँचना असंभव था। इसमें ८८०० अश्वशक्ति के १८ सिलिंडर रेडियल एयरकूल्ड राइट साइक्लोन इञ्जिन लगे थे। इसमें ५० कैलिबर की कई मशीनगने और २० मिलिमीटर की तोपे रहती थी। इसके पहले किसी भी अमेरिकन भारी बम वर्षक में तोपें नहीं फिट

की गयी थीं। रेडियो तथा उतरने के लिए डबल पहिये भी रहते थे। बैठने की जगहें एयर कंडिशन और प्रेशराइज होने के कारण ३० हज़ार फुट की ऊँचाई पर आक्सीजन का थैला इस्तेमाल नहीं करना पड़ता। सारा काम उसमें लगी १५० बिजली की मोटरों और १ अतिरिक्त गैसोलीन इञ्जिन से होता हैं। चालक, सहचालक, दिग्दर्शक, बमवर्षक, इञ्जीनियर, रेडियोमैन, तोपची और सहायक खलासी मिलाकर एक विमान में ७ से ११ तक आदमी होते हैं।

अन्वेपकों का ध्यान चालकहीन बमवर्षको पर भी गया। १६४३ में अमेरिका में ऐसा एक विमान तैयार हो गया। यह रेडियो से चलता था। ऊबड़-खाबड़, मुलायम और रेगिस्तान की बलुई जमीन पर उतरने के लिए एक खास तरह के 'केटर पिलर गियर' बनाये गये। विमानों के पहियो के टथूबों में हवा की जगह हीलियम गैस भरने का भी निश्चय किया गया है, क्योंकि यह हवा से सात गुनी हलकी रहती है। २०४ यात्री होनेवाले बड़े विमानमें पहियोंमें २। मन तक हवा लगती है। इसकी जगह हीलियम भरने से १ आदमी उसमें और बैठाया जा सकता है।

विमानो में लगनेवाला हाइ आक्टेन गैसोलीन बड़ा दाहक रहता है। और उसको आग लगने का बहुत डर रहता है। एक नये तरह का हाइ आक्टेन गैसोलीन बनाया गया है जो जल्दी जलता नहीं, दियासलाई जलाकर डालिये तब भी नहीं जलेगा, मिट्टी के तेल की तरह। इस तेलका उपयोग युद्धोत्तर काल में उड़ते हुए ही विमानो में तेल भरने के लिए हो सकेगा।

अमेरिका में 'एयर पोजीशन इण्डिकेटर' नाम का एक छोटासा यंत्र बनाया है जिससे वायुयान चालक को हर मील पर इस

बातका पता लग जाता है कि विमान कहाँ और किस अक्षांश-देशांतर

हेलिकोप्टर विमान एक नाव पर स्थिर 'मँडरा' रहा है। पानी में उतारने के लिए पहियों की जगह पीपे है। हेलिकोप्टर ठीक ऊपर, आगे पीछे चाहे जैसे उड़ सकता है।

पर है। विमानोंके इञ्जिनोंमें जो प्रगति हो रही है उससे हम कह

सकते हैं कि शीघ्र ही केवल बटन दबाकर विमान चलाये जा सकेंगे। विमानोंको शुरूमें कुछ दूर जमीन पर दौड़ना पड़ता है। 'रिवर्सिंग प्रापेलर' आदि बनाकर यह दूरी अब यहाँतक कम की गयी है कि विमान सीधा ऊपर हवा में उठ सकता है। हेलिकोप्टर अब ऐसे ही बन रहे हैं।

आँधी-तूफानकी पूर्व-सूचना देनेवाले यंत्र बनाये गये हैं। न टूटनेवाले खिड़कियों के शीशे बनाये गये हैं। बम की जगह टारपीडो बरसानेवाले विमान भी बनाये गये हैं। हवाई टारपीडो इसी युद्धकी देन है।

युद्धकाल में ब्रिटेनने ३०० तरहके विमान और १०० तरह के इञ्जिन बनाये। इनका पूरा विवरण शीघ्र ही प्रकाशित होने को है। जेर्ट विमान सबसे पहले ब्रिटेन में ही बने। इसका पूरा उपयोग अब शांतिकाल मे अमेरिका ले रहा है, ब्रिटेन पिछड़ गया है।

विमानो को अधिक से अधिक हलका बनाने के प्रयत्न किये गये। जापान ने इसमें सब से अधिक उन्नति की थी। लकड़ी के और प्लास्टिक के भी विमान बने थे। पर अल्यूमिनियम का 'डू एल्यूमिनियम' नाम का एक मिश्रण सबसे अच्छा समझा जाता था। रबर के भी विमान बनाये गये थे ताकि जल, स्थल और बरफ पर भी वे उतर सके।

पेट्रोल की टंकियों में गोलियों से छेद होकर हवाई जहाज बेकार न हो जायँ इसलिए रबर की ऐसी टंकियाँ बनायी गयीं कि गोलियाँ आरपार जाने पर भी छेद अपने आप बंद हो जाय।

हवा में बहुत ऊपर अधिक सर्दी होती है इसलिए बिजली से गरम किये जानेवाले सूट बनाये गये। उड़ते-उड़ते ही विमानों में तेल भरने की तरकीबे निकाली गयीं।

बम और टारपीडो गिराने के अलावा विमानोंका उपयोग सैनिक गिराने, परचे गिराने तथा युद्ध और खाद्य सामग्री गिराने
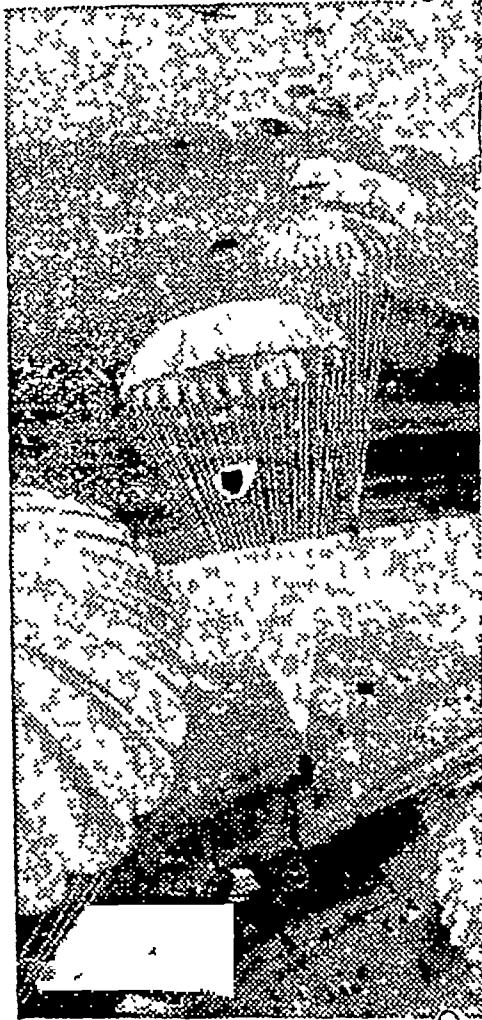
किसी हवाई अड्डेपर आकाश से छतरी सैनिक उतर रहे हैं।

के लिए भी किया गया। खेतों में और नदियों में जहर और

भीषण रोग कीटाणु फैलाने के लिए भी किया जा सकता था, पर शायद यह नहीं किया गया। इन सब के लिए 'छतरी' या पैराशूट बड़ा प्रसिद्ध रहा। तरह तरह की छतरियां और उसमें लटकाये जानेवाले डब्बे बनाये गये।

मशीनें तो ऐसी-ऐसी बनी कि अचम्भा भी लजा जाय। बम गिराने के लिए बटन दबाना काफी हो गया। भारी भारी बम ठीक अपने निशाने पर चाहे जितने ऊपर उड़कर - बहकर आते-गिरते हैं। बम वर्षक धीरे चलते हैं। इसलिए तेज चलनेवाले लड़ाकू विमान बने। इन पर तोपें भी चढ़ायी गयीं।

बमवर्षा से बचने के लिए 'चिरागगुल' के नये नये ढङ्ग निकाले गये। सारे के सारे शहर आकाश से रात में लुप्त हो जाते थे, पर इसके काट के लिए ऐसे फ्लैश बम बनाये गये कि एक बम से ५ मील के प्रदेश में रात मे दिन का सा प्रकाश हो जाता था। चिरागगुल के लिए केवल ५० गज से ही दिखाई देनेवाला प्रकाश बनाया गया। अँधेरी सड़कों पर पुलिसवाला दिखाई दे इसलिए चमकदार रंगों के उसके टोप और लाल नीली बत्तियां बनायी गयी।

तरह तरह के रक्षागृह बनाये गये और तहखानों में ही हवाई अड्डे भी बनाये गये। ए. आर. पी. या ह. ह. हि. की शिक्षा मे भी प्रगति होती गयी। बमके धड़ाकों से कान खराब न हो जाय इसलिए तरह तरह के कार्क या प्लग बनाये गये। बमों से शीशे न टूटे इसलिए उनको बचाने के उपाय निकाले गये और ऐसे शीशे बनाये गये जो ब्लास्ट या स्प्लिटर से नष्ट न हो। तरह तरह की विमान विरोधी बंदूकें बनायी गयी।

शत्रु को धोखा देने के लिए जर्मनों ने मारीच नगरों (फैटम

सिटी) का निर्माण किया। शत्रु के धोखा देने के लिए कैमोफ्लाज कला का बहुत विकास हुआ।

विमानो को फँसाने के लिए गुब्बारों के तरह तरह के जाल बनाये गये। इन गुब्बारो और तारो में तरह तरह के दृश्य और अदृश्य विस्फोटक रखे गये। बन्दूक से ऐसे लोहे के तार आकाश मे फेके जाते थे कि विमानों के पंखों को फँसा लेते थे। इन्हें स्पाइडर-वेब कहते हैं। आग का चक्र बनाकर विमानों को घेरने वाले 'फ्लेमिंग ओनियन' भी बनाये गये।

ब्रिटेनने विमान विध्वंसक एक बहुत ही अद्भुत यंत्र बनाया था। इसे हम हवाई सुरंग जाल कह सकते है। हवाई आक्रमण की सूचना मिलने पर बमवर्षक इन सुरंगों के जालको आकाशमें बिछा देते थे—लटका देते थे। गुब्बारोमें और छोटी छोटी रेशमी छतरियो में पियानो के तार से सुरंगे लटकायी जाती थीं। जब कोई विमान तारसे छू जाता था तो सुरंग उस तरफ खिसक आती थी और विमान से टकरा जाती थी। इस तरह बहुत से विमान नष्ट किये गये थे।

विमानों में रहने वाले रेडियो यंत्रों और केमरा यंत्रों मे भी द्वितीय महासमर कालमें आश्चर्य जनक प्रगति और परिवर्तन हुआ है। शत्रुके यंत्रो के स्थानका पता लगानेके लिए, समुद्रकी गहराई का पता लगाने के लिए और कुहरे में जमीन पर उतारने के लिए यंत्र बनाये गये।

हवा मे उड़ते हुए विमान पर सर्च लाइट या चोरबत्ती की रोशनी बराबर बनाये रखनेवाला रेडियो से चलने वाला एक यंत्र बनाया गया।

'मूर डिटेक्टर' नामका मलवेके नीचे दवे हुए मनुष्यों का पता लगाने वाला एक यंत्र बनाया गया।

कुहरे में बम फेकने में सहायता करने वाले 'बाम्ब रे' और एक्स रे बाम्बसाइट' आदि यंत्र बनाये गये। रेडियों से फोटो भेजे जाने लगे, विमानों से विना तेज रोशनी किये इन्फ्रारेड किरणोंसे फोटो और चल चित्र लेनेका काम किया गया। बंदूकों-तोपों की मार और तेजी बढ़ाने के लिए तरह तरह का प्रयोग किया गया। बोफर तोप १ मिनट में २० बार गोले दागती है। ब्रिटिश विमान वेधी तोपों की मार ३००० फुट-तक है। वैसा तोपें एक मिनट में ८४० राउंड गोलियां दागती है।

बम

बमों की भीषणता मे भी अपार वृद्धि की गयी। तरह तरह के नये ढङ्ग के बम बनाये गये। विस्फोटक, विध्वंसक, दाहक और धुआँ छोड़नेवाले बमो में उत्तरोत्तर सुधार किया गया। चीखनेवाले बम बनाये गये। एक बम छूटने से उसमें से कई बम निकलनेवाले बम (मोलोटोफ) बनाये गये। फासफोरस बम बनाये गये। फासफोरस, मैग्नेशियम, एस्फाल्ट, गैसोलीन आदि से अमेरिका में एक ऐसा दाहक बम (एम-७४) बनाया गया, कि ५ सेर वजन के बम से निकला श्वेतोष्ण लावा बुझाना गैसोलीन (एम ६९) बम की दाहकता से भी भयंकर था। ८५० से २२०० पौंड वजन तक के 'मानव बम' बनाये गये। इनमे एक मनुष्य लक्ष्य स्थान से ३०० फुट तक स्वयं संचालित कर बम को ले जाता है और वहीं से उसे छोड़ देता है और खुद छतरी आदि से नीचे आ जाता है। इसके बाद ४ हजार पौंड

वजन के 'ब्लाक बस्टर' बनाये गये। फिर १० हजार पौंड के और

१२००० पौंड वजन का बम

अंत में २२ हजार पौंड के 'टाउन बर्स्टर' बम बने। १२ हजार पौंडवाला बम १२ फुट गहरी कंकरीट तोड़ता था और १०० फुट चौड़ा गढ़ा जमीन में बनाता था। सबसे उच्च मान तो उड़न बमों, बाण (राकेट) बमों और अंत में परमाणु बम ने लिया है। उड़न बम और बाण बम चालकों की अनावश्यकता की आवश्यकता वश निकले। परमाणु बम भीषणता बढ़ाने के खयाल से निकले। इनके लिए तो अलग अलग अध्याय होंगे। इस प्रगति का अगला कदम अर्थात् चालकहीन राकेट प्रेपित परमाणु बम होगा।

ग्लाइडर और गुब्बारे

विमानों में चालको की आवश्यकता दूर करने के लिए सबसे पहले ग्लाइडर बने। ये बिना इञ्जिन के विमान हैं। बड़े बड़े विमान इन बिना मशीनो के विमानो को हवा मे छोड़ देते हैं और फिर ये जमीन पर उतरते हैं। ये ग्लाइडर आकाश के मालके और मुसाफिरो के डब्बे ही समझिये। ग्लाइडरो के बाद गुब्बारे निकले।

कुछ लोग जानते हैं, पर बहुत से लोग नहीं जानते, कि द्वितीय महायुद्ध में कुछ जापानी बम अमेरिका पर गिरे थे और उन्होंने कुछ जाने ली थीं। जापानी बम से पहले पहल मई १९४५ में अमेरिका में जीव नाश हुआ। जापानियोंने बम ढोने के लिए गुब्बारे बनाये थे। पूर्वी हवा मे वे जापान से छोड़े जाते रहे और १२५ मील प्रति घंटा के हिसाब से हवा के ऊपर आसमान में से अमेरिका की ओर जाते। जब वे नीचे आनेको होते तो उसमे ऐसा यंत्र बना था कि एक एक बालूकी बोरी छूटती जाती जिससे गुब्बारा फिर हलका हो कर आकाश में ऊपर चला जाता।

८० से १२० घंटे में ये गुब्बारे अमेरिका में पहुँचते रहे। उस समय तक बालूकी आखिरी बोरी गिर जाती, तब दूसरा यंत्र काम
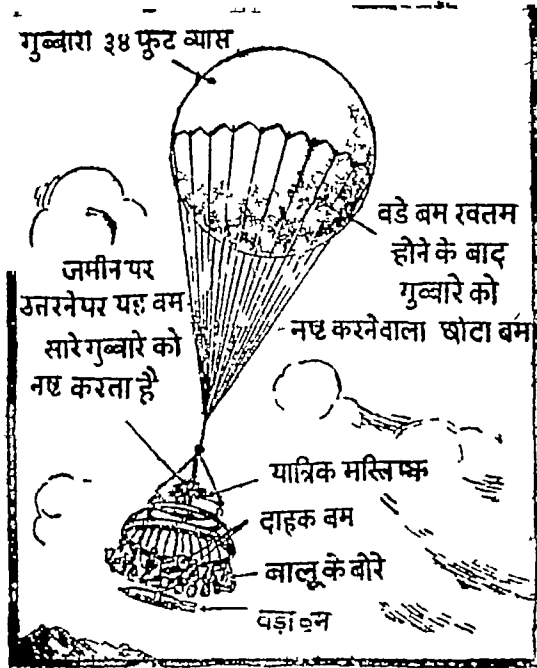
करने लगता और एक के बार एक दाहक बम नीचे गिराये जाते। जब बम खतम हो जाते तो तीसरा यन्त्र काम करने लगता। इस यंत्र से गुब्बारा ही अपने आप विस्फोट से ही आकाश में नष्ट हो जाता।

ये गुब्बारे ३४ फुट व्यास के और तेल के कागज की ५ तहों से बनाये जाते रहे।

अमेरिका प्लास्टिक के ऐसे गुब्बारे बनाने की सोच रहा है जो आसमान में २० मील ऊपर जायँगे।

जापान ने आत्मघाती विमान (कामीकाजे) भी बनाये थे।

यह राकेट से चलता है। उड़ाका कभी वापस नहीं आता कामो-काजे, बाका बम और टारपीडो ले जानेवाली आत्म-घाती नौकाएँ मिलकर तीनों को हम जापान का कामीकाजे या आत्म-घाती नौ बेड़ा कह सकते हैं।

वी अस्त्र

विजयास्त्र, विनाशास्त्र और गुप्तास्त्र

द्वितीय महासमर में नवीन नवीन शस्त्रास्त्र बनाने में जितनी वैज्ञानिक प्रगति हुई उतनी इसके पहले इतने ही काल में और किसी अन्य युद्ध में भी नहीं हुई थी। तरह-तरह के बिलकुल नये ऐसे अस्त्र निकले जो इसके पहले कल्पना में भी नहीं थे। युद्धारंभ के समय यदि कोई किसी अस्त्रों के कारखाने में जाता और फिर वही युद्ध समाप्ति के समय जाता तो उसे मालूम हो जाता कि वैज्ञानिक ज्ञान में कितना क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। बम-गोलाबारूदों में, यातायात और बातालाप के साधनों में बराबर तेजी से प्रगति होती गयी। हजारों सुधार किये गये और सुधार काल में वही गुप्तास्त्र हो जाता था। इस प्रगति के कारण बमगोला बारुद की विस्फोटक शक्ति तो इतनी बढ़ी कि पिछले महायुद्ध में एक युद्ध-पोत की जो विस्फोटक शक्ति थी वह इस महायुद्ध के अंतकाल में एक सेना उतारनेवाली नौका में आ गयी!

स्थलपर सुरंगें बिछाने की युद्धकला तो पुरानी है, पर इसमें युद्ध में बहुत सुधार हुआ। सुरंगे स्थल के अतिरिक्त जल में बिछायी गयी और आकाश से स्थल-जल पर गिरायी गयी। आकाश में भी बिछायी गयी जिसका वर्णन पहले आ चुका है।

द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी का बिलकुल नया पहला गुप्तास्त्र चुम्बकीय सुरंग था। प्रथम महायुद्ध में ही वैज्ञानिकों ने इसकी कल्पना पेटेण्ट करा ली थी, पर द्वितीय महासमर में सब से पहले जर्मनी ने इसे बना लिया। ये सुरंगे समुद्र मे बिछायी जाती हैं और इसके अन्दर का चुम्बक जहाजों के लोहे के आकर्षण से सुरग को जहाज के पास खींच ले जाता है और जहाज से भिड़ते ही विस्फोट होता है। इसका काट भी शीघ्र निकला जिसे 'डी गार्जिंग' या जहाजों को विचुबकीय करना कहते हैं। जहाजों के चारो तरफ तार लपेट दिया जाता है। बहुत नीचे उड़ने वाले विमान भी ऐसे चुबकीय तार ले जाते हैं कि समुद्र के अदर की चुंबकीय सुरंगें अपने आप फूट जाती हैं।

जब मित्रों का विमान उत्पादन बढ़ा और जर्मनी का घेरा अधिक कड़ा हुआ तो उसे नये तरह के विमानों को ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता प्रबल मालूम होने लगी। पेट्रोल या हाइ आक्टेन गैसोलीन की कमी के कारण ऐसे विमान बनाना भी जरूरी था जिसमें अन्य तरह का ईंधन लगता। परमाणु भग की शक्ति पर प्रयोग चल ही रहे थे। उसे जर्मनी युरेनियम शक्ति कहता था। पर उसमें देर थी। इसलिए जर्मनों ने जेट शक्ति से विमान चलाने की बात ढूंढ़ निकाली।

जेट शक्ति

विमान विद्या में जेट शक्ति का आविष्कार इस युद्ध की एक बहुत बड़ी बात है। शायद आकाश-संचार करने के मनुष्यों के प्रयत्नों का यह अतिम सर्ग है। विमानो के वर्तमान इञ्जिनो में

सुधार कर अधिक से अधिक ५० मील और गति बढ़ायी जा सकी, ४५० मील प्रति घंटे से अधिक प्रापेलर या पंख बेकार हो जाते हैं।

जेट विमान

पर जेट शक्ति से यह गति न मालूम एकदम कितनी बढ़ गयी है।

जेट शक्ति का सिद्धांत इस प्रकार है—मान लीजिये हमने एक पोला गोल बर्तन लिया और उसमें जलने वाली गैस भरी। एक जगह उसमें छेद रखा। जलाने के लिए बिजली का स्पार्क प्लग रखा। जब स्पार्क प्लग जलाकर गैस जलायी गयी तो विस्फोट से बर्तन के अंदर दाब एकदम बढ़ा। और जगह तो उसका असर नहीं पड़ता, पर छेद के ठीक सामने घन दाब रहता है और छेद के पास शून्य दाब। परिणाम स्वरूप छेद के ठीक सामने की ओर दबाव काम करता है और गोला प्रवृत्त होता है। पर गोला चाहे हवा में रहे, चाहे पानी मे चाहे शून्य में यही क्रिया होगी।

तीन तरह की जेट शक्तियाँ है राकेट सबसे अच्छी और सबसे सरल होती है। इसमें गैस जलने के लिए बाहरी हवा की जरूरत नहीं रहती इसलिए यह पृथ्वी के वायु स्तर के बाहर जा सकता है। राकेट की नोक में एक संदूक में आक्सिजन, द्रवरूप में, रहता है और वह नलियों के रास्ते 'चूल्हे' में जाता है। ईंधन, अल्कोहोल या गैसोलीन दूसरी सदूकोमे रहता है। जर्मनो के वी २ राकेट बमो में ऐसी ही मोटरों का इस्तेमाल किया गया है। यह बम २५०० मील प्रति घंटे की गति से ६० मील ऊपर तक जा चुका है।

दूसरे प्रकार के जेट इञ्जिनों में चूल्हा जलने के लिए बाहर से हवा लेनी पड़ती है। लोकहीड पी ८० विमानो में यही इञ्जिन रहता है। इञ्जिन के सामने से हवा प्रवेश करती है। वह दबाकर 'चूल्हे' मे भेजी जाती है जहाँ दबा हुआ ईंधन मिट्टी का तेल भी आता है। स्पार्क प्लग से शुरू कराकर विस्फोट लगातार होता रहता है। जेट मोटर न ठंढ़ी करनी पड़ती है और न उसमें चिकनाहट के लिए तेल देना पड़ता है। यह बड़ा हलका (१ अश्व-शक्ति का इंजिन १ पौंड वजन के हिसाब से) होता है।

जेट इञ्जिन के तीसरे प्रकार में जेट मोटरो से ही वर्तमान ढंगके प्रापेलर या पंखे घुमाकर विमान चलाये जाते हैं। ५०० मील की गनि से अधिक वह नहीं जा सकता, पर यह बहुत प्रचलित होगा और रेलवे ट्रेनो, बसों और शायद मोटरो में यही चलेगा। १० साल में एक भी विमान बिना जेट इंजिन के नहीं रहेगा।

जेट इञ्जिन के विमानों में न तो आवाज होती है और न धक्के लगते हैं। जमीन पर अवश्य सीटी की सी आवाज सुनाई देती है।

जेट इञ्जिनो ने अब गति पर अबाध अधिकार पा लिया है। जेट युद्धक विमान ध्वनि की गति ७६३ मील प्रति घटे से भी अधिक तेज जा सकते हैं। पर हवा में १५०० मील की गति से अधिक नहीं जा सकते क्योंकि इस गति में इञ्जिन असह्य गरमी पैदा कर देता है। हवा के ऊपर यह समस्या नहीं रहती।

जेट शक्ति का सब से पहला उपयोग जर्मनो ने किया। इनका मेसरश्मिट १६३ वी विमान राकेट-युद्धक था। ब्रिटिश लाकहीड पी ८० बाद में निकला। जेट और राकेट शक्ति ही अब भविष्य

के विमानों में इस्तेमाल की जायगी। हवा के ऊपर १ लाख मील की गति से भी विमान चल सकेगा।

क्या मनुष्य का शरीर यह तेज गति बर्दाश्त कर सकेगा? २२ वर्ष पहले डाक्टरों का कहना था कि मनुष्य २०० मील प्रति घंटे के वेग को सहन नहीं कर सकेगा। पिछली शताब्दी के मध्य में ६० मील की गति ही मनुष्य के प्राण लेने के लिए पर्याप्त समझी जाती थी। अब ब्रिटिश जेट मीटियर विमान ६१३ मील का रेकर्ड स्थापित कर चुका है। इस पृथ्वी की सतह १००० मील प्रति घंटे के हिसाब से दिन रात चल ही रही है और सारा सौर मंडल भी शून्य में ५ लाख मील फी घंटे की गति से चल रहा है। मनुष्य संभवतः उक्त गतियों को बर्दाश्त कर लेगा। समय और स्थान के बारे भी हमें अब अपनी सारी कल्पनाएँ बदलनी पड़ेंगी। भारत से अब कुछ घंटों में अमेरिका जाया जा सकेगा। पृथ्वी 'छोटी' हो जायगी।

आज के मोटर रखनेवाले १० साल में हेलिकोप्टर रखने लगेंगे। अब मनुष्य इस पृथ्वी के बाहर भी जाकर नयी नयी अज्ञात सृष्टियों का पता लगा सकेगा।

जेट विमान द्वितीय महासमर का बिलकुल नया दूसरा गुप्तास्त्र है। इसी जेट शक्ति को आधार बनाकर फिर जर्मनों ने अपने नये नये अस्त्र बनाना शुरू किया।

उड़न बम जेटशक्ति की ही देन है। यह इस युद्ध का तीसरा बिलकुल नया गुप्तास्त्र है। इसे हम रेडियो नियन्त्रित बम या रेडियो-बम कह सकते हैं। जर्मनों ने इसका नाम वी१ रखा था। इसमें मनोवैज्ञानिक युद्धकला की भी जोड़ थी क्योंकि वी के बाद एक के बाद एक नंबर बढ़ाकर मित्रपक्ष की जनता के हृदय

पर भीषण आघात किये जाते थे। उड़न बमों में चालक नहीं रहता। ये चालक हीन, पर सयंत्र, रेडियो नियंत्रित बम-विमान
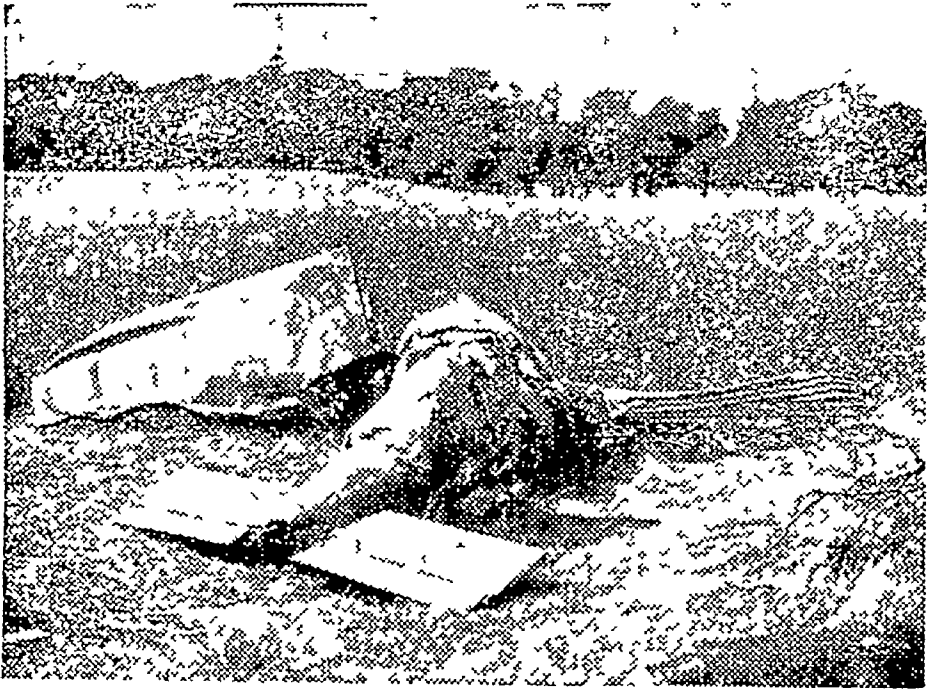
एक टूटा जर्मन उड़न बम

है। जेट विमान का ही यह एक परिवर्धित रूप है। आँधी तूफान की इसको परवाह नहीं। उड़न बमो ने बमवर्षकों से अधिक लंदन को नुकसान पहुँचाया।

द्वितीय महासमर के ७ मुख्य और बिलकुल नये गुप्तास्त्रों में रेडार सबसे अधिक महत्त्व का है। इसका विस्तृत विवरण अन्यत्र है। उसी रेडार की सहायता से निकला तोपों को अपने

आप निशाना देनेवाला यंत्र (एलेक्ट्रोनिक गन पांईटर) भी इन्हीं गुप्तास्त्रों में गिना जाता है। ये दोनो गुप्तास्त्र ब्रिटेन अमेरिका ने अधिक उन्नत और अधिक व्यवहृत किये। सातमें अब बाकी बचे दो। इसमें से १ परमाणु बम अमेरिका ने तैयार किया और जिसके लिए अलग अध्याय इसी पुस्तक में है। दूसरा राकेट या बारूदी बाण। इसके सिद्धांत का सबसे ज्यादा उपयोग रूस ने किया, पर जगत में ढोल पीटा गया सबसे अधिक (परमाणु बम से कम) वी २ या उड़नेवाले खंभे का तथा इसके बाद बननेवाले वी ३, वी ४ आदि का।

बारूदी बाण की शक्ति से चलनेवाले इन बमो ने युद्धों में दूरीके बारेमें पुरानी कल्पना बिलकुल मिट्टीमें मिला दी। वी २ का लक्ष्य भी कोई छोटा नहीं, पर पूरा का पूरा शहर होता था। पहले पहल लक्ष्य स्थान ३०० मील की दूरी का ही रहता था, पर इनमें इस तेजी से सुधार होता गया कि मालूम होता था कि हजारों मील दूर अतलांतक पार यूरोप से अमेरिका में भी लक्षित शहरों में राकेट बम बहुत शीघ्र और ठीक ठीक गिराये जा सकेंगे। राकेट अस्त्र बनाने का जर्मनों का मुख्य उद्देश्य दूर दूर के पूरे शहर नष्ट करना था, पर ब्रिटेन-अमेरिका ने इस शक्ति का उपयोग अधिक से अधिक युद्धकार्य करने के लिए किया।

जेट और राकेट में फर्क यह होता है कि राकेट को आक्सि-जन अपने ईंधन से मिलता है। जेट को आक्सीजन हवा से लेना पड़ता है। इसलिए आकाश में कुछ मील ऊपर, जहाँ हवा नहीं रहती वहाँ, जेटचालित विमान नहीं भेजा जा सकता और हवा में रहने के कारण जेट विमान को दूसरे विमान या विमान-विरोधी तोपें नष्ट कर सकती हैं, राकेट विमान को नहीं कर

सकती। राकेट बम आकाश में ऊपर सौ मील से भी अधिक ऊँचे भेजे गये हैं। वे इतनी तेजी से जाते हैं कि उनके अगल-बगल का धातु का हिस्सा गरम होकर लाल हो जाता है। इनमें सुधार कर राकेट विमान बनाने की योजना वैज्ञानिक बना रहे हैं।

राकेट बम और राकेट अस्त्र

जर्मनों ने १५ जून १९४४ को ब्रिटेन पर 'वी' बमों की वर्षा शुरू की। ९ महीने में इससे करीब ८॥ हजार आदमी मरे और २५ हजार घायल हुए। केवल लंदन क्षेत्र में ३ लाख के करीब मकान नष्ट हुए। 'वी २' बरसना नवबर मे शुरू हुआ और अप्रैल १९४५ में जर्मनी की युद्धशक्ति के साथ साथ वी अस्त्र भी खतम हो गये। जर्मनी ने कुल १०५० 'वी २' ब्रिटेन पर गिराये।

राकेट या बारूदी बाणों पर जर्मनी में २० साल से प्रयोग हो रहे हैं, पर युद्धावश्यकता के कारण बारूदी बाण बमों पर दिसंबर १९३५ से ही बाल्टिक तट पर पीनेमुण्डे में प्रयोग शुरू हुए। यहाँ के ४५० जर्मन वैज्ञानिक युद्धसमाप्ति के बाद नजरबंद कर लिये गये। (इनमें से ब्रिटेन-अमेरिका में जो हिस्सा बंटा' हुई उनमें ब्रिटेन घाटे में रहा है। उसे केवल २३ वैज्ञानिक मिले हैं। अमेरिका में ११६ वैज्ञानिक जा चुके हैं जिनमें 'वी २' राकेट के संयोजक वर्नर फान ब्रान भी हैं।) जर्मन सरकार ने पीनेमुण्डे स्टेशन पर ५ करोड़ पौंड से अधिक रकम खर्च की। वहाँ के कारखाने में १२००० आदमी काम करते रहे। ३७ से ४२ तक प्रयोग के लिए ४०० और बाद में भी करीब १००० राकेट पीनेमुण्डे से छोड़े गये। ये बाल्टिक समुद्र में गिरते रहे। एकाध

स्वीडन में भी चला जाता था। उसीसे इस स्टेशन का पता मित्रों को लगा और उन्होंने १९४९ से ही इस पर बम वर्षा शुरू की।

'वी २' ४६ फुट लंबा होता था और उसका औसत व्यास ५॥ फुट था। उसकी नाक का अगला हिस्सा बड़ा नोकीला था। पीछे ४ पंखें रहते थे। वजन उसका १२-१४ टन रहता था।

वी २ के अगले भाग में २००० पौंड विस्फोटक पदार्थ भरा उसका विस्फोटक सिर रहता था। एक हिस्से में उसके चालकयंत्र रहते थे। ईंधन के लिए अल्युमिनियम की दो पेटियां रहती थीं, एक में ७५०० पौण्ड अल्कोहाल रहता था और दूसरी में ११००० पौण्ड द्रव आक्सीजन। टर्बाइन और उसको चलाने के लिए गैस जनरेटर रहता था।

अल्कोहोल और द्रव आक्सीजन नलियो में से दबाकर एक पेटी में भेजे जाते थे। वी २ को बाहर से किसी चीज की आवश्यकता नहीं रहती थी, राकेट शक्ति से वे चलते थे। छोड़ने के पहले वे कंकरीट की बैठक या कड़ी जमीन पर खड़े किये जाते रहे। हाइड्रोजन पर-आक्साइड और कैलशियम पर-मैगनेट के घोल मिलाकर तेज गरम भाप पैदा की जाती थी जिससे टर्बाइन चलते थे और उससे पंप चलते थे और लिक्विड आक्सीजन और अल्कोहोलको जवर्दस्ती उसकी जलने की पेटी में नलियों से भेजते थे। इस पेटी में फिर दूरसे बिजली की सहायता से चिनगारी की जाती जिससे राकेट या वी २ छूटता। एक बार जलने पर अल्कोहोल और आक्सीजन बड़ी जोर से जलता। इसके गरम गैस पेटी के पीछे से निकलने की कोशिश करते। इसीमें २६ टन शक्ति पैदा होती जो वी २ को आगे बढ़ाती।

वी २ पहले ठीक ऊपर जाता, पर फिर उसमें एक गाइरो

स्कोप नियंत्रक यंत्र काम करने लगता था और वी २ को अपने लक्ष्य की दिशा में मोड़ देता था। एक मिनट राकेट ऊपर जाने
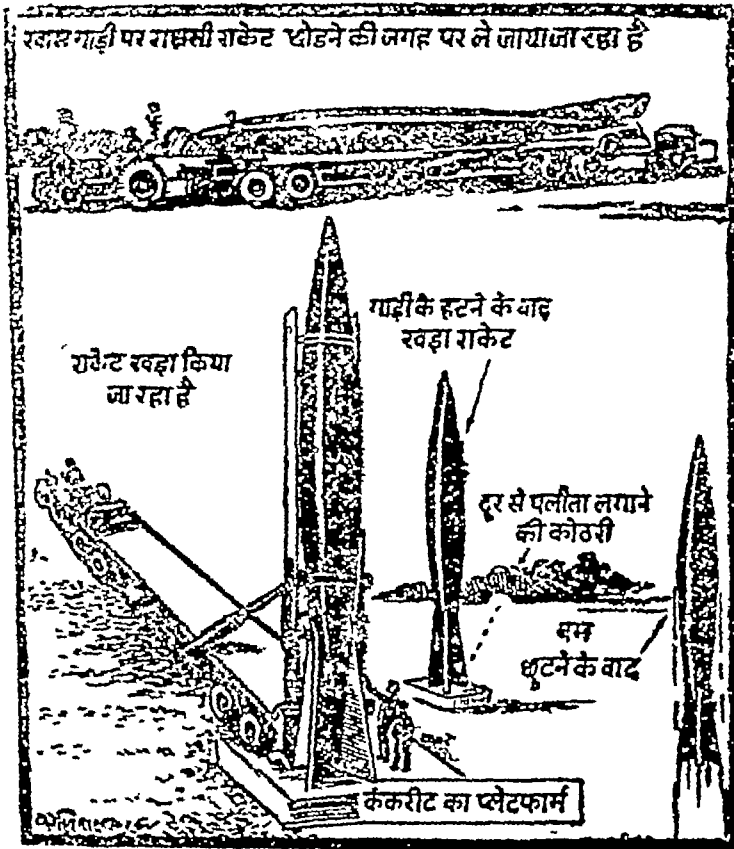
'वी' २ छोड़ने की क्रिया

के बाद ४५° घूम जाता। उसका ईंधन भी अपने आप पेटों में जाना बंद हो जाता जहाँ पर ईंधन मिलना रुकता उसीसे राकेट की उड़ान का हिसाब लगाया जा सकता था। ईंधन अगर ज्यादा हो और ज्यादा देर जले तो राकेट और तेज जाय और उसको

उड़ान की मार (जमीन की, ऊपर आकाश की नहीं) भी बढ़ जाय। जब ईंधन बंद होता था उस समय राकेट की गति ३०० मील प्रति घंटा रहती थी। यहाँ से वह फिर बिलकुल गणित के हिसाब से जाता।

इस स्थान से हवा की रुकावट बिलकुल नहीं रहती और वी२ सीधे ६० मील ऊपर जाता और फिर उसी गोलाई से नीचे उतरता। इसकी दूर मार २००—३०० मील रहती थी। ५ मिनट में यह ब्रिटेन पहुँच जाता था। इसकी चाल शब्द की गति से अधिक होती है इसलिए इसके आने की आवाज विस्फोट होने के बाद सुनाई देती थी। ६० मील की ऊँचाई पर जाने के बाद उतरने के समय हवा की रुकावट के कारण वी२ की गति धीमी हो जाती थी और उसका धातु का भाग इतना गरम हो जाता था कि लाल दिखाई देने लगता था। वी १ और वी २ दोनों में करीब १ टन ही विस्फोटक पदार्थ रहता था, पर वी २ तेजी से गिरने के कारण जमीन के अंदर बहुत गहरा घुस जाता था।

---

(३)

जर्मनों के कुछ प्रस्तावित वी अस्त्र

राकेटों में सुधार करने का काम जर्मन वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने बराबर जारी रखा था। वे शत्रु के हवाई जहाजों को नष्ट करने के लिए रेडियो-नियंत्रित राकेट बनाना चाहते थे। इसे वे 'वाटर फाल' कहते थे। यूरोप से न्यूयार्क पर राकेट गिराने की जर्मनोंकी बड़ी इच्छा थी। जर्मनों ने जेट संचालित गोताखोर और जेट सचालित टारपोडो बना लिये थे। वे दूर मार बहुमुखी तोपें भी बना रहे थे। वे एक चालक बैठनेवाले उड़नबम भी बना रहे थे। यह चालक लक्ष्य के पास पहुँचने के पहले बटन दबाकर छतरी के सहारे नीचे उतर जाता। जर्मनों ने एक महा बम वर्षक बनाया था। यह ४ जेटों और २ साधारण प्रापेलर इञ्जिनों से चलता था। आकाश में स्ट्रेटोस्फियर में जा सकता था और न्यूयार्क पर बम बरसाकर वापस यूरोप आ सकता था। इसकी गति शब्द की गति से अधिक होती। जर्मनी जेट संचालित मेसरश्मिट २६२ महा युद्धक विमान भी बनाना चाहता था।

जर्मनो ने बिजली की शक्ति से नियंत्रित एक ग्लाइडर बम बनाया था। यह तार द्वारा संचालित होता था और १२ मील दूर से शत्रु के विमान पर छोड़ा जा सकता था। १२ मील लम्बा तार लपेटने पर एक साधारण चुरूट के आकार जैसा हो जाता

था। यह बम बिलकुल तैयार हो चुका था। ऐसा ही एक टारपीडो (स्पाइडर) भी उन्होंने बना लिया था। यह चाहे जैसे ऊपर नीचे
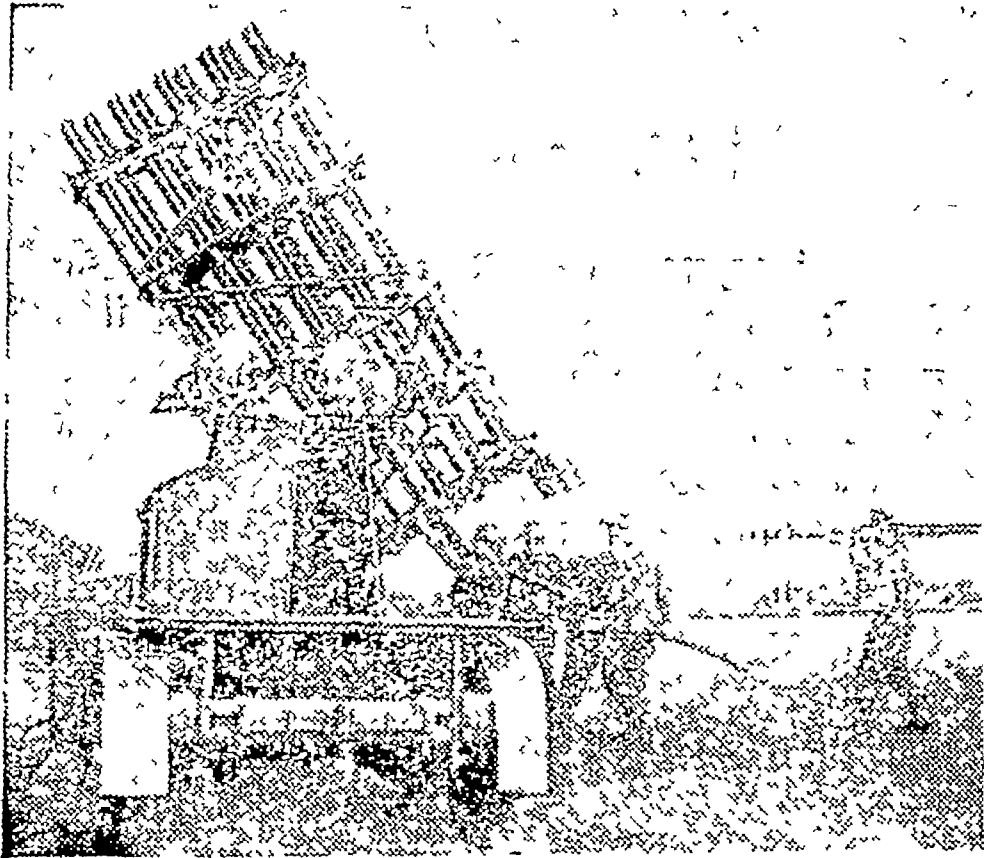
ब्रिटेन की राकेट छोड़नेवाली विमान विरोधी तोप

इधर-उधर घुमाया जा सकता था और मछली की तरह पानी के ऊपर छलांग मार कर फिर डुबकी भी लगा सकता था।

'बटर फ्लाई' नाम का एक विमान विरोधी राकेट बन रहा था। विमानों के इञ्जन की गति से जो इन्फ्रारेड किरण निकलते

हैं उसके आकर्षण से यह अपने लक्ष्यके पास जाता। हवा में दस मील ऊपर भी यह अपने लक्ष्य के १० गज दूर जाकर फूटता और उसे नष्ट करता। वैज्ञानिकों का कहना है कि भविष्य में विमान विरोधी अस्त्र केवल राकेट से ही बनेंगे।

समुद्र के ३०० फुट अन्दर गोता लगाये हुए गोताखोरों से राकेट छोड़ने की जर्मन कोशिश कर रहे थे।

जर्मन वी२ राकेटों में डैने भी लगाना चाहते थे। इससे न मालूम क्या हो जाता ?

वी २ जैसे ध्वनि की गति से भी अधिक तेज चलनेवाले अस्त्रों की प्रारम्भिक परीक्षा करने के लिए जर्मनों ने (टनेल्स) हवाई सुरंगेबनायी थी। ऐसी एक सुरग के पुर्जे अलग अलग कर अमेरिका के इञ्जीनियर जर्मनी से अमेरिका ले गये हैं।

मित्रों के राकेट अस्त्र

युद्ध कालमें मित्रोंके राकेट अस्त्र जर्मनीकी तुलनामें नगण्यसे थे। ब्रिटेनने राकेटसे २ विमान विरोधी अस्त्र तैयार किये थे। इनमें एक जी० ए० सी० नामकी राकेट छतरियाँ थी जो विमानोंको चारो ओर पिंजरेसे घेर लेती थीं। दूसरा अस्त्र दस नलीवाली तोप थी जो एक साथ दस अग्निबाण छोड़ती जिससे लक्ष्य चूकनेका भय नहीं रहता। अमेरिका ने छोटे छोटे राकेट बम बनाये थे जो बाजूका नामकी छोटी नलियोंमें रखकर बटन दबानेसे छूटते थे। टंकोंके विरुद्ध इनका खूब उपयोग हुआ। रूसने भी राकेटकी छतरियाँ, तोपें और बम बनाये थे। ३० नलीकी एक टंक विध्वंसक तोप बनी थी जो ३० राकेट एक साथ छोड़ती थी। रूसियोंने अपने

विमानोंसे राकेट बम फेंके थे। जर्मन इसे 'काली मौत' कहते थे।
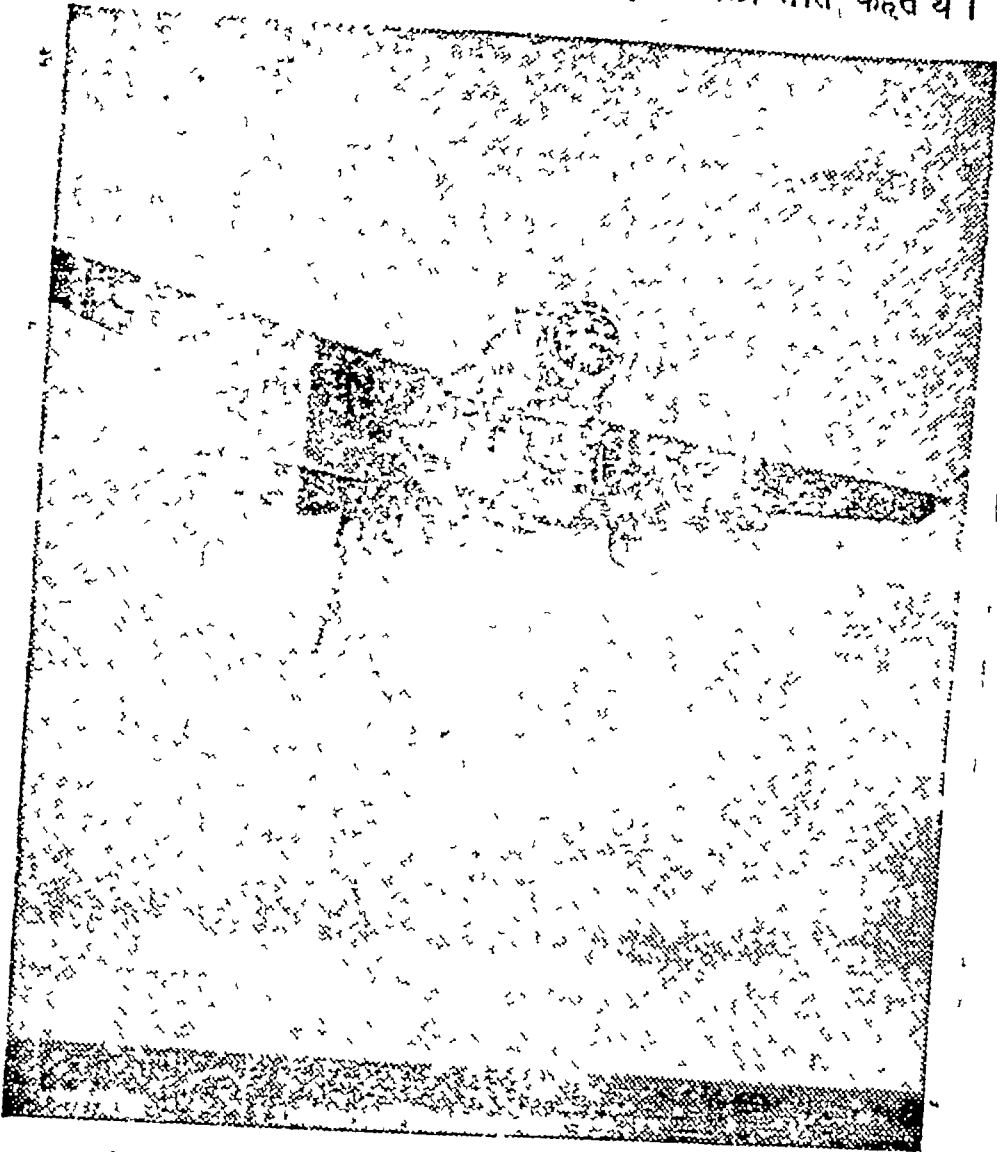
पखोंके नीचे से राकेट छोड़नेवाला अमेरिकन बम वर्षक विमान

जर्मनोंने कूरियर नामक एक विशेष आविष्कार किया था जिसके द्वारा जहाजोंसे संदेश शीघ्रतापूर्वक भेजे जा सकते थे।

इसकी तुलनामें रेडियोका उपयोग भी महत्वहीन सा हो गया था। जर्मनोंने एक और विशेष यंत्र बनाया था जिससे बड़ी दूरका फोटो चित्र लिया जा सकता था और जहाजोंको ढूंढ़ा जा सकता था। जहाजकी गर्मीसे उसके इञ्जनका पता बीस मील दूरसे लगाया जा सकता था।

उन्होंने इन्फ्रारेड किरणोंका एक ऐसा टेलिस्कोप बनाया था जिससे तोपची रातमें भी अपना लक्ष्य स्थान देख सकते थे।

'गाड़ी नावपर'
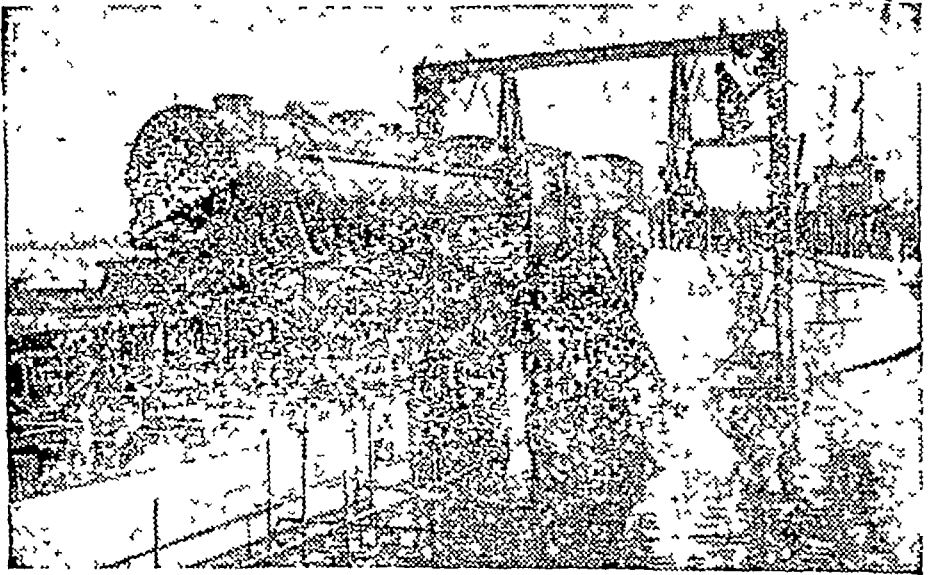
(४)

परमाणु बम

द्वितीय महासमरका भयंकरतम अस्त्र परमाणु बम बनानेके लिए दोनों पक्षोंकी ओरसे विकटतम प्रयत्न हो रहा था। क्योंकि इसमें सफलताका अर्थ यह था कि परमाणु बनाने के लिए उसके ईश्वरने जो करोड़ो वोल्टके बराबर ताकत उसमे खर्च की वह अल्पायासमें परमाणुको तोड़कर मनुष्यको प्राप्त हो जाय और विध्वंस कार्यमें लगायी जाय। प्रकृतिने अपनी लीलाके प्रसंग वश कार्यशक्तिसे जड़ पदार्थ बनाये, मनुष्य उस जड़ पदार्थको कार्य-शक्तिमें परिवर्तन करनेका प्रयत्न करने लगा। आइन्स्टाइन लिखा।

ई = एम × सी²

ई = कार्यशक्ति, एम = पदार्थका वजन, सी = प्रकाशकी गति। इस हिसाबसे १ पौंड पदार्थसे १० अरबसे अधिक कीलोवैट घंटा कार्यशक्ति मिलती है।

वैज्ञानिक पिछले ४० वर्षसे परमाणु पर प्रयोग करते आ रहे हैं। उन्होंने देखा कि सारा जड़विश्व ९२ मूल द्रव्योंसे बना है और हरएक मूल द्रव्यका रासायनिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश परमाणु है। परमाणु भी प्रोटान और इलेक्ट्रानसे बने हैं। एलेक्ट्रान ऋण विद्युत्कण और प्रोटान घनविद्युत कण है। परमाणु सौर मंडलकी तरह रहता है और उसमें प्रोटान सूर्य ओर एलेक्ट्रान ग्रह उपग्रहकी तरह। हरएक परमाणुमें १ प्रोटान और कई एलेक्ट्रान रहते हैं और ये एलेक्ट्रान आसानीसे इधर उधर किये जा सकते हैं। प्रोटान

भी पाजिट्रान और न्यूट्रानसे बना रहता है। न्यूट्रानमें कोई विद्युतशक्ति नहीं रहती।

इसी ज्ञानको आधार बनाकर वैज्ञानिकोंने प्रोटान पर न्यूट्रान की छड़ी की मार देकर प्रोटानको तोड़ना चाहा। नाइट्रोजन जैसे कुछ परमाणु तोड़े भी गये, पर दो चार। उससे शक्ति लाभ नहीं हो सकता था। शक्ति लाभ होनेके लिए यह क्रिया सतत होनेकी आवश्यकता थी—कड़ियोंकी जंजीर जैसे फैली रहती है उसी तरह एक परमाणुके बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा आदि।

जर्मन यहूदिन वैज्ञानिक लीसे माइतनेर। मित्र और जर्मन यह कभी नही भूलेंगे कि इन्होंने परमाणु भग का जर्मन रहस्य मित्रों को बताया

द्वितीय महासमर प्रारंभ होनेके पहले बरलिन के कैसर विलियम इन्स्टीटयूट के जर्मन वैज्ञानिक ओ हान और स्ट्रासमान इसमें सफल हो गये। युरेनियमके परमाणुको उन्होंने तोड़ा, पर वे इसका पूरा रहस्य खुद ही नहीं समझे। रहस्य समझा उनके साथ काम करनेवाली एक यहूदिन वैज्ञानिक लीसे माइतनेर ने। हिटलर के यहूदी विरोधी अत्याचारके कारण वह डेनमार्क भाग गयी और

वहाँके प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर नील्स बोरको उसने यह रहस्य बता दिया। लीसे माइतनेर और बोरने मिलकर ब्रिटेन-अमेरिकाको यह रहस्य बताया। फिर भी जर्मन परमाणु तैयार करनेके प्रयत्नमें लगे थे। अक्टूबर १९४५ तक शायद वे इसे तैयार कर लेते, पर मईमे ही उनकी हार हो गयी। जुलाईमें अमेरिकाने इसे तैयार कर लिया और एक बम अपने ही देशमें प्रयोगके लिए और २ बम जापान पर गिराये। जापान पहले ही पस्त हो गया था, इन दो बमों और रूसकी युद्ध घोषणासे उसका काम तमाम कर दिया।

विनाश शक्ति—६ अगस्त १९४५ को अमेरिका के राष्ट्रपति ने घोषणा की कि हमने परमाणु बम बना लिया है। यह घोषणा युग-क्रांति करनेवाली थी। सूर्य और तारा मंडलोमें काम करनेवाली शक्तिपर मनुष्यने विजय पायी और उसे अपने वशमें कर उससे सेवा लेना शुरू कर दिया था। उस परमाणु बम की विस्फोटशक्ति २०००० टन टी० एन० टी० (ट्राइनाइट्रोटूलोल) नामके अति विस्फोटक पदार्थ की शक्तिसे भी अधिक थी—दो हजार महादुर्गों की विनाशक शक्ति, १० हजार टन वजन के बम के कंप से २ हजार गुना अधिक कंप तथा ४१००० टन वजनके दाहक बमोंकी सम्मिलित दाहक शक्ति के बराबर एक परमाणु बम की शक्ति थी। यह सिर्फ विस्फोटके समय ही विध्वंस करता हो यह बात भी नहीं, विस्फोटके बाद भी इसकी किरण विसर्जक शक्तिसे बहुतसे घातक रोग होते है। फोटोके प्लेट बनानेवाले कारखानो को इन किरणोंसे बहुत हानि पहुँच सकती है, पहुँची भी।

मशीनरी—परमाणु बम में युरेनियम धातु के परमाणु तोड़े जाते हैं। पर इसमें २३५ परमाणु वजन वाला युरेनियम ही काम देता है। मामूली युरेनियम के १४० भागों में २३५ परमाणु वजन

वाला युरेनियम १ भाग होता है। इस लिए बम बनाने के कार-खाने में पहला कार्य यू २३५ को अलग करना है। यह दो तरह से किया जाता हैं। युरेनियम को विद्युत युक्त कर इलेक्ट्रो मैग्नेट-के बीच से गोलाकार नलियों से फेंका जाता है। यू २३५ और प्रकार के युरेनियम से हलका होता है, इस लिए वह नलियों के टेढ़े किनारों पर गिर जाता है और वहां से उसे अलग कर लेते हैं।

दूसरे प्रकार में मामूली युरेनियम वायु रूप बना कर बहुत सूक्ष्म चलनियों में से (finest submicroscopic filters) पप किया जाता है। यू २३५ अधिक वायु रूप (volatile) होने के कारण पहली छननी में से निकल जाता है।

यूरेनियम धातु में तो अलग करने का झगड़ा रहता है, पर यूरेनियम से एक प्लुटोनियम धातु विशुद्ध रूप में बनती है और इसके परमाणु भी युरेनियम के परमाणु की तरह से टूटते और शृंखलाबद्ध विघटित होते जाते हैं। यूरेनियम को न्यू ट्रनों से बमबार्ड करने पर पहले नेपचूनियम बनता है। यह अस्थिर द्रव्य है और अपने आप प्लुटोनियम बन जाता है।

परमाणु बम में रेडियम और बेलिरीयम के न्यूट्रनो की छड़ी की मार यू २३५ पर की जाती है। इससे यू २३५ टूट कर बेरि-यम और क्रिप्टन के प्रोटान बन जाता है तथा और भी न्यू ट्रन देता है। ये न्यू ट्रन फिर पास वाले यू २३५ पर हमला करते हैं और इसी तरह शृंखला चलती है। इसी में गामा और बीटा किरण भी निकलते रहते हैं।

न्यू ट्रन तेजी से नहीं, पर धीरे धीरे अपना कार्य करें, इस लिए ग्रेफाइट, पैराफिन, हेवीवाटर और साधारण पानी से काम लिया जाता है।
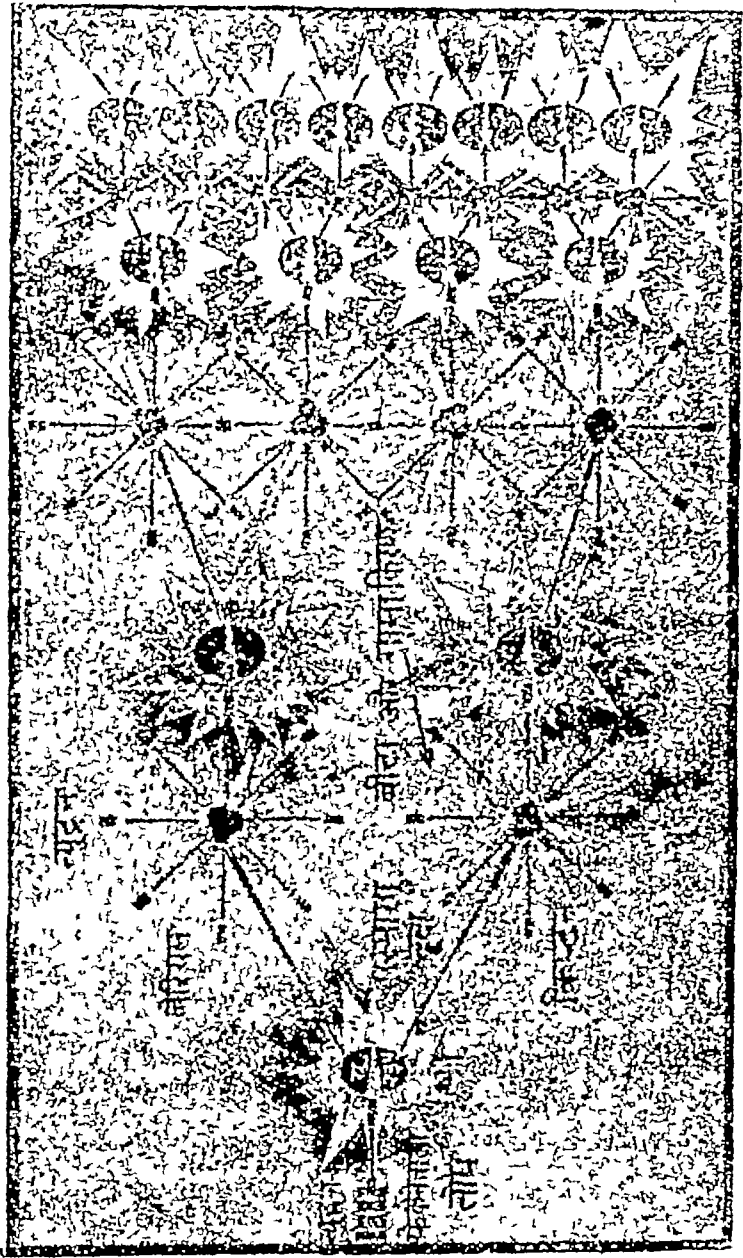
परमाणु भग की शृङ्खला

परमाणु शक्ति भविष्य में कितना काम आने वाली है, यह इससे स्पष्ट होगा कि १ पौंड युरेनियम की शक्ति ४० लाख पौंड कोयले और ३० लाख पौंड पेट्रोल जलाने से मिलने वाली शक्ति के बराबर होती है। (परमाणु बम के आविष्कार-महत्व आदि का विस्तृत विवरण इसी लेखक की 'परमाणु बम' पुस्तक में पढ़िये। मूल्य केवल ।=)
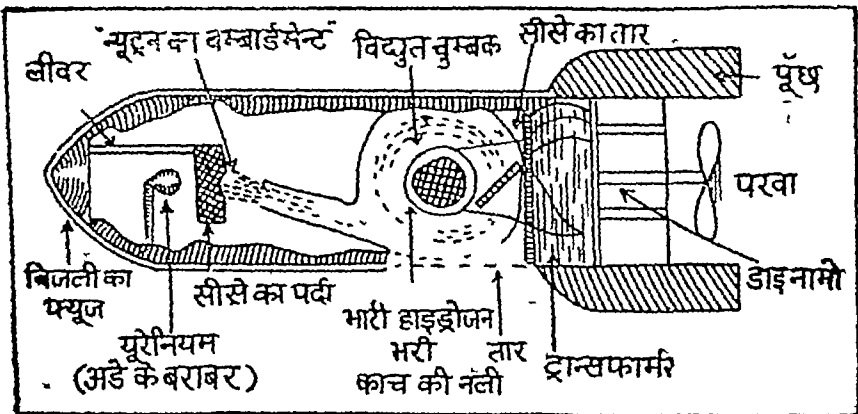
परमाणु बम की सम्भाव्य मशीनरी

(५)

रेडार

शकर का तृतीय नेत्र

अगस्त १९४५ के प्रथम सप्ताह में परमाणु बम के निर्माण की बात प्रकट की गयी। एक सप्ताह बाद (१४ अगस्त को) एक और आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय युद्ध-भेद खोला गया। इसका नाम रेडार था। परमाणु बम और रेडार ये दो इस युद्ध में आधुनिक विज्ञान की सब से बड़ी और व्यापक परिणामकारी देने हैं। रेडार ने परमाणु बम के विस्फोट की तरह कोई आवाज नहीं की इस लिए उसके आश्चर्यजनक रूप का डंका दुनिया में उतना न बजा जितना परमाणु बम का बजा। वास्तव में रेडार परमाणु बम से भी अधिक महत्त्व का है। परमाणु बम की खोज में अमेरिका ने २ अरब डालर खर्च किये थे तो रेडार की खोज में उस देश ने ३ अरब डालर (करीब पौने दस अरब रुपया) खर्च किये। रेडार के कारण ही परमाणु बम और भयंकर बनाया जा सकता है या उसका काट निकाला जा सकता है। परमाणु शक्ति का शांतिकालीन उपयोग तो अभी आशा ही आशा में है, पर रेडार के कारखानों में प्रतिवर्ष २ अरब डालर की पूंजी खर्च करने का काम शुरू हो गया है। अमेरिका मे युद्ध के पहले रेडियो के व्यवसाय में भी इस से षष्ठांश ही लगा था।

रेडार क्या है ?—रेडार शकर का तृतीय नेत्र है, तीसरी 'आँख हैं। हमारी आँख प्रकाश किरणों के कारण देखती है, इसी लिए प्रकाश किरणों के अभाव में अँधेरे में उसे कुछ दिखाई नहीं देता। पर रेडार को प्रकाश किरण की आवश्यकता नहीं, वह रेडियो कि किरणों से देखती है, वह अँधेरे में, कुहरे में दूर की चीजें देखती हैं, कितनी बड़ी और कौन सी वस्तु है इसका पता लगा लेती है और फिर उस की फोटो हमें रेडार में दिखाई देती है। शंकर की यह तीसरी आँख रेडियो किरणों से चीजे देख कर प्रकाश किरणों में उन्हें परिवर्तित करती है और हमारी साधारण दोनों आँखे उसका उपयोग कर लेती है। (मुख पृष्ठ पर रेडार यंत्र का ही चित्र है।)

१६४० में फ्रांस को हराकर फिर जर्मनी ने ८ अगस्त को ब्रिटेन पर हवाई आक्रमण शुरू किये। 'ब्रिटेन का युद्ध शुरू हुआ। इस समय ब्रिटेन की विमान सेना वहुत छोटी सी थी, और जर्मनों के भारी 'लुफ्टवाफे' विमान दल का सामना करना उसके लिए असभव था, पर रेडार और केवल ३०० ब्रिटिश उड़ाकों ने ब्रिटेन को वचा लिया। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने रेडार का आविष्कार किया। रेडियो के सिद्धांतो को कौशल से व्यवहार में ला कर उन्होंने मृत्यु और विध्वस का तांडव करने वाले जर्मन बमवर्षकों के निर्दिष्ट स्थल पर पहुंचने के पहले ही उनका पता लगाने का यत्र ढूंढ निकाला। ब्रिटिश तट और अतलांतक के मार्ग पर जर्मन गोताखोरों ने जो प्रलयलीला शुरू की थी उससे भी रेडार ने ब्रिटेन को वचाया। जर्मनी पर रात-दिन आसमान से हमले किये जा सके उसका भी श्रेय रेडार को ही है।

१९३४ में ही ब्रिटिश वैज्ञानिकों को यह आभास मिल गया था

कि रेडियो किरणों की छोटी सी शक्ति यदि आकाश में विमानों से टकरा कर प्रत्यावृत्त हो तो उससे उस विमान का पता लग जायगा। वैज्ञानिकों ने इसपर प्रयोग शुरू किये। प्रयोग सफल हुआ और रेडार का जन्म हुआ। देखा गया कि १० मीटर लम्बाई की रेडियो लहरें यदि प्रत्यावृत्त होकर किसी परदे पर प्रकाशित की जाय तो उसपर विमान आदि का पता लग जायगा। यह भी देखा गया कि यदि दो एरियलों को अलग अलग ऊँचाई पर रखा जाय और फिर परदेपर देखा जाय तो उससे विमानोंकी ऊँचाई और सख्या का भी पता लग सकता है। प्रारम्भिक यन्त्रों में परदेपर केवल प्रकाश किरण और रेखाएं (ग्राफ) दिखाई देती थी और उसीसे विमानों आदि की दूरी-ऊचाई आदि का गणित से हिसाब लगाया जाता रहा। पहला रेडार यन्त्र १९३५ में ब्रिटिश वैज्ञानिक सर वाल्टर वैट ने बनाया था।

एक रेडार यन्त्र विमानों की उपयुक्तता ५ गुना बढ़ा देता है, जहाजों की भी उपयुक्तता इसी प्रकार बढ़ती है युद्ध शुरू होने के पहले ही मार्च १९३९ में ब्रिटेन में स्काटलैण्ड से लेकर आइल आव वाइट तक रेडार के बचाव के स्टेशन बना लिये गये थे।

माल्टापर जब धुरी विमानों ने आक्रमण करना शुरू किया तो एक बार तो वहां केवल ६ युद्धक विमान रहे, पर रेडार ने उनको बचाया।

सैनिकों को रेडार तो अब रात दिन की तरह मामूली चीज हो गयी है, पर इसने लड़ाई का सारा नकशा ही बदल दिया है। इसने मनुष्य को मानों एक और–छठां–ज्ञानेंद्रिय दिया है।

रेडार यन्त्र रेडियो किरण फेकता है। यह अगर किसी चीज से टकरा जाती है तो वापस आती है और रेडार के परदेपर उस

चीज की सूरत रोशन हो जाती है। यह दिनमें और अंधेरे मे भी दिखाई देती है। गोला छूटकर जाना, दूर से जहाज का आते जाना, विस्फोट, हवाई जहाज का गिरना आदि बातें रेडार देख लेता है। समुद्रपर छोटी छोटी चीजे भी २० मील दूरी तक की उसके परदेपर पकड़ जाती हैं। विमानों में से रात दिन और बादलों के अन्दर से भी उसके परदेपर नीचे की जमीन का पूरा नक़शा आ जाता है—समुद्रतट, जहाज, बन्दरगाह, जेटी, पहाड़, झील, नदियां, पूल और शहर भी दिखाई देते हैं। बहुत पास की चीज भी सकुचित रेडार किरण से दिखाई दे सकती है—नदीपर बसे हुए किसी शहर का तटवर्ती भाग, बाग, और इमारतें भी उसके नकशे पर आ जाती हैं।

साधारणतः जिस चीज से रेडार-किरण टकराते हैं उसकी तसवीर परदेपर आ जाती है, पर ठीक ठीक उसका आकार-प्रकार नहीं आता। रेडार इतना अचूक हिसाब बताता है कि ओरान में 'जीन बार्ट' जहाज को एक अमेरिकन जहाज ने केवल १ गोले से २६ मीलकी दूरी से डुबा दिया था। ब्रिटिश जहाज 'हुड' और जर्मन जहाज 'बिस्मार्क इसी रेडार के कारण डुबाये जा सके। पर्ल हार्बरपर जापानी विमान आने की सूचना भी रेडार ने दी थी, पर किसी ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया था।

विभिन्न उपयोग के लिए विभिन्न तरह के रेडार-यन्त्र बनाये गये हैं। १०० मील से भी अधिक दूरीपर से विमानो के आने की सूचना देनेवाला यन्त्र है जो यह बताता है कि कितनी तेजी से और किस तरफ विमान आ रहा है। लक्ष्य की दूरी आदि का हिसाब लगाकर मशीनगन या विमान विरोधी तोपों का निशाना यांत्रिक विधि से साधनेवाले भी यन्त्र हैं। रात में वैमा-

निकोंके लिए आंख का काम करनेवाले, विना देखे हवाई अड्डोंपर अंधाचुक्की विमान सहीसलामत उतारनेवाले, आसमान में वहुत ऊंचाईपर उड़नेवाले गुब्बारों और अंधडो का पता देनेवाले भी रेडार-यंत्र बने हैं। वैज्ञानिको का कहना है कि एक दिन रेडार और परमाणु बम से ऐसा अस्त्र वनाया जा सकता है जो अपने आप लक्ष्य देखकर उसपर जा टकराये !

रेडार को खोज निकालने के लिए जर्मन १९३५ से ही कोशिश करते रहे। ब्रिटेन ने भी वाद में कोशिश की। ब्रिटेन मे इसको पहले रेडियो लोकेशन कहते थे, पर वाद में उन्होने अमेरिकन वैज्ञानिकों का नाम 'रेडार' (रेडियो डिटेक्शन ऐण्ड रेंजिंग) मान लिया। जापान और फ्रांस में भी लड़ाई के पहले ही प्रारम्भिक रूप का रेडार-यन्त्र जहाजो में काम में लाया जाता रहा। रेडार के सिद्धान्त का सर्व प्रथम शोधक जर्मन वैज्ञानिक हाइनरिख हर्टज (१८८७) था।

साधारण सिद्धात—पाठक अब जानते होंगे कि ईथर की लहरो या विद्युत चुम्बकीय लहरोंमें सबसे छोटी कासमिक किरणें, वाद में गामा किरणें (परमाणु वम में), और सबसे बड़ी ६ हजार मील लंबी विजली की किरणें होती हैं। इन्हीं में प्रकाश और रेडियो किरणें पास पास होती हैं। प्रकाश किरणें रेडियो किरणोंसे छोटी होती है। जो प्रकाश जो काम नहीं कर सकता वह इनसे किया जाता है। रेडियो किरणों में भी जो सबसे छोटी होती है (माइक्रोवेव्स) वे प्रकाश किरण की तरह दूर फेंकी जा सकती हैं। कोई ठोस या द्रव भूमिपर टकराते ही ये वापस लौटती है। प्रकाश किरणों की गति से ही ये (१८६००० मील) लौटती हैं, पर प्रकाश जहां कुहरे में बादलों में, धुए में नहीं जा

सकता, मनुष्य की आंख की शक्ति से दूर की चीजें नहीं देख सकता वहां रेडियो किरणें यह काम कर देती हैं। रेडियो की लहरों पर प्रकाश की लहरों से अधिक नियन्त्रण भी आदमी कर सकता है। इससे ठीक ठीक और यान्त्रिक विधि से ही सारा हिसाव हो जाता है।

रेडार किरण फेकता है, वह टकराकर लौट आती है। इसका एरियल गोल घूमनेवाला होना है जिससे लक्ष्य की दिशा का भी बोध हो जाता है। किरण के छूटने से लौटने तक का समय नापा जाता है, उसका आधा किया जाता है, लहरों की गति के हिसाव से चीज की दूरी अपने आप नाप कर टेलिविजन के चमकते परदेपर केथाड किरण ट्यूब की सहायता से एक क्षणसे भी कम मे लक्ष्यकी तसवीर रौशन कर देता है। रेडार एक सेकण्ड में करीब १००० बार किरण फेकता है ताकि १०० मील की दूरी तक के लक्ष्य पर पहुँच कर वह लौट आवे और उसके वाद दूसरी किरण जाय। इससे दो किरणो की आपस में लड़ाई नहीं होने पाती। टकरानेवाले किरण में जितनी शक्ति भेजी जाती है उसका नगण्य अंश प्रति किरण के साथ वापस आता है। इस नगण्य अंशको बढ़ाने के लिए १९४० में ब्रिटिश वैज्ञानिको ने 'मैग्नेट्रान' बनाया और परमाणु बम के फार्मुले की तरह इसे भी अमेरिका में भेज दिया। मैग्नेट्रान में एक चुम्बकीय सिलिंडर में वहुत तेजी से एलेक्ट्रान फेके जाते हैं। रेडार किरण इतना छोटा और तेज होता है कि समुद्र के अन्दर डूबे हुए गोताखोर के सतह के ऊपर के छोटे से पेरिस्कोप को भी पकड़ लेता है। रेडार किरण को प्रत्यावृत्त करने की शक्ति विभिन्न वस्तुओ में विभिन्न प्रकार की होती है। इसी गुण का लाभ उठाकर उनका चित्र वनता है। धातु

बहुत अच्छा प्रत्यावर्तन करता है, जमीन बिलकुल नहीं, पानी भी अच्छा प्रत्यावर्तक है, पर उसकी प्रत्यावर्तित किरण कुछ टेढी हो

...यन्त्रोंकी परीक्षा हो रही है

जाती है और उसकी ज... ...ह रेडार के परदे पर काली हो जाती है। रेडार का एक ओर चम... ...त्कार बताने लायक है। वह यह भी बता

देता है कि लक्षित विमान या जहाज शत्रुका है या मित्र का। यह काम एक छोटे से यन्त्र से होता है जिसका नाम आई एफ एफ (आइडेण्टिफिकेशन, फ्रेण्ड आर फो) है। जब किसी विमान या जहाज को किसी मित्र रेडार की लहर आकर टकराती है तो यह यन्त्र सांकेतिक भाषा में परबलका शब्द बता देता है।

रेडार किरण सीधे जाती है इसलिए क्षितिज के पार नहीं देख सकता। दीवार के अदर घर की बात भी नहीं जान सकता। भविष्य में वर्तमान यत्रो में सुधार कर शायद यह टक्कर बचाने के लिए मोटरों में और रेल इञ्जिनों में लगाया जा सके। जहाज अब बरफ की चट्टानो से जहाजों से, या पहाड़ियो से टकराने से बच जायँगे। कुहरे से भरे और जहाजो से भरे बंदरगाहो मे भी, अब जहाज पूरी तेजी के साथ जाकर रुक सकेंगे। विमानो में भी रेडार से यही फायदा उठाया जा सकेगा।

भविष्य—जिस तरह परमाणु बम ने जड़, चैतन्य और शक्ति के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के लिए नया क्षेत्र खोल दिया है उसी तरह रेडार ने भी विश्वरहस्य जानने के लिए एक भारी क्षेत्र वैज्ञानिको के सामने खोल दिया है। माइक्रो किरण पानी की तरह नली के अंदर से जा सकते है। मनुष्य के शरीर से वे प्रत्यावृत्त होते हैं। इन किरणों पर ध्वनि या चित्र भेजा जा सकता है। एक आदमी मीलो दूर अपने दोस्त से माइक्रो किरणो से गुप्त बातचीत कर सकता है। विमानों से अब टेलिविजन और सवाक चित्र ब्राडकास्ट किये जा सकते हैं। रेडार किरण सूक्ष्मातिसूक्ष्म समय नाप सकता है। सेकण्ड का लक्ष्यांश भी अब नापा जा सकता है। यही रेडार का सबसे बडा काम है। इससे अब परमाणु से लेकर तारो तक के रहस्यों के बारे में महत्त्व के नये खोज किये जा

सकेंगे। शायद चांद से भी रेडार की प्रतिध्वनि प्राप्त की जा सकेगी।

रेडार या माइक्रो लहरियों और टेलिविजन लहरियों में रेडियो लहरियों से जो एक कमी है वह यह है कि माइक्रो लहरें सीधी रेखा में जाती हैं और अभी तक आसमान में किसी सतह से टकराकर उनके वापस होने की बात नहीं मालूम हुई है। इससे टेलिविजन स्टेशन ५० मील से अधिक दूरी पर किसी काम के नहीं रहते, क्योंकि पृथ्वी गोल है। इस कमी को दूर करने के लिए यह सोचा गया कि आसमान में ३० हजार फुट की ऊँचाई पर उड़नेवाले विमानों में जमीन के टेलिविजन स्टेशनों से कार्य-क्रम भेजे जायँ और वे विमान फिर उसे जमीन पर भेजें। इस प्रकार एक विमान जमीन पर ४२२ मील के व्यासक्षेत्र में कार्यक्रम भेज सकता है। कुल १४ विमानों से अमेरिका जैसे बड़े देश भर में एक ही कार्यक्रम टेलिविजन पर भेजा जा सकता है।

कुछ रेडार यंत्र माइक्रो लहरों से अधिक लंबी लहरों से काम लेनेवाले भी बनाये गये हैं। इनको लोरान कहते हैं। इसका फायदा यह होता है कि ये लहरे सीधी पंक्ति में न जाकर पृथ्वी के गोलाकार के साथ जाती हैं। ऐसे यंत्र में किनारे से १२८० मील दूर तक के जहाज आदि का संकेत मिल सका है। रेडार सेट १। मन का भी हो सकता है और ५ टन का भी। पर ये किरणें नहीं हो सकती और इससे यंत्र की अच्छाई घट जाती है। रेडार का ट्रांसमिटर और रिसीवर एरियल एक ही होता है।

मित्र राष्ट्रों ने जब जर्मन गोताखोरों को ढूँढ निकालने में रेडार का उपयोग किया तो जर्मनों ने एक ऐसा यंत्र बनाया जो रेडार की किरण गोताखोरों से टकराते ही बता देता था। इस

पर विमानो ने दूसरी ही लंबाई की माइक्रो लहरें इस्तेमाल करना शुरू किया।

जर्मन गोताखोरों की लड़ाई केवल रेडार के कारण विफल हुई। जहाजों और विमानो में रेडार यन्त्र बैठाये गये थे और उन्होंने अनलांनक का कोना-कोना शकर के इस तृतीय नेत्र से छान डाला था।

रेडार इस युग में विज्ञान की सबसे अद्भुत वस्तु है। रेडार के कारण अब प्रत्येक मनुष्य कुछ ही काल में रेडियो टेलिफोन रखने में समर्थ हो सकेगा।

रेडार की सहायता से विमानवेधी गोलाबारी करते समय एरियल विमान की दिशा में अपने आप घूमता जाता है और उसीकी सहायता से तोप का मुँह भी घूम जाता है।

युद्ध के पहले १॥ मीटर से छोटी रेडियो लहरों का उपयोग कभी नहीं किया जाता था। रेडार में इससे छोटी लहरो के उपयोग का सारा क्षेत्र वैज्ञानिकों के सामने खुला है।

शातिकाल में उपयोग—युद्धकाल में 'एलेक्ट्रानिक (विद्युत अणु) विज्ञान ने जो उन्नति की है, वह चमत्कारपूर्ण और अद्भुत है। दूरदर्शन (टेलीविजन) और रेडार मिलकर भविष्य में न मालूम कैसे कैसे यन्त्र उत्पन्न कर सकते हैं। विनाशक क्षेत्र में रेडार और परमाणु बम मिलकर तो प्रलय ला सकते हैं।

विद्युत अणु विज्ञान से कारखानों के जटिल यंत्रोंका स्वयमेव सञ्चालन सम्भव हो सकेगा और वस्तुओं के रासायनिक एवं भौतिक विश्लेषण के लिए सहस्रों नये ढङ्ग निकाले जा सकेंगे।

संभव है कि एक दिन प्रकाश और ताप के लिए हमारे घरो में आनेवाली बिजली को तारों की आवश्यकता ही न रह जाय। नव बत्तियां ऐसी होंगी कि दीवार में लगे प्लग से तार द्वारा सम्बन्ध करने की जरूरत न होगी। यह बत्ती कहीं भी रखी और जलायी जा सकेगी और उसमें लगे उसके छोटे से एरियल से उसे शक्ति (बिजली) प्राप्त होती रहेगी। यह भी सम्भव है कि सवारी गाड़ियां या सामान ढोनेवाली गाड़ियां अपनी शक्ति आकाश के ईथर से प्राप्त करे या जमीन के अन्दर से 'इण्डक्शन केबल' के द्वारा शक्ति प्राप्त करें जैसा कि आजकल रूस के कई कारखानों में हो रहा है।

रेडार शायद अन्धों को नेत्र दें। शब्द के साथ वह उसके पास का धूमिल चित्र अन्धों के मस्तिष्क में पहुंचा सके। व्हेल मत्स्य पकडने में रेडार का बहुत उपयोग होगा। रेडार यंत्रों के बनाने में इतनी उन्नति की गयी है कि जमीन में किसी गुफा में भी रखने लायक छोटे छोटे रेडार यंत्र बनाये गये हैं।

रेडार का काट—कार-प्रतिकार दोनो विज्ञान जानता है। रेडार निकलते ही रेडार को व्यर्थ करने के उपाय भी निकाले गये। जर्मनों ने विमानों और गोताखोरो पर लगाने का एक ऐसा मसाला ढूंढ निकाला कि जिसके लगाने पर रेडार की किरणें बेकार हो जाती थीं।

जर्मनो के रेडार यंत्र बेकार करने के लिए ब्रिटेन ने एक अजीब तरीका अख्तियार किया। ब्रिटिश विमान जर्मन रेडार-यंत्रो के आसपास धातु का पानी चढ़े हुए कागज के पत्तर विमानों से गिराते थे। इससे जर्मन रेडारयंत्रो के किरण बेकार हो जाते थे।

---

(६)

भावी महासमर के शस्त्रास्त्र

द्वितीय महासमर में जेट, राकेट और परमाणु शक्ति क सम्वन्ध में जो बातें मालूम हुई हैं उससे अब निस्सन्देह रूप से कहा जा सकता कि भावी महायुद्ध (वर्तमान तीन बड़ो ने यदि स्वार्थपरता और अदूरदृष्टि न छोड़ी तो वह अवश्यम्भावी है क्योंकि यदि शांति से विश्व में एक विश्वसरकार की स्थापना न हुई तो महायुद्ध या महायुद्धों से एक एक बड़ा खतम होकर अन्त में होगी ।) ५०० या हजार मील की दूरी से लड़े जायँगे । मुख्यतः युद्ध हवा में ही विमानो से होंगे । हवा का सबसे अच्छा काम १५-२० बरस के लड़के और लड़कियाँ ही करती हैं, यह बात इस युद्ध ने सिद्ध कर दी है । इसलिए अगला युद्ध मुख्यतः आकाश का और लड़कों का और राकेटों का होगा ।

अगले युद्ध में विमान-विरोधी गोलाबारी भी सारी राकेटों से ही होगी । जर्मनो ने 'वाटर-फाल' नाम के रेडियो-सञ्चालित राकेट वना लिये थे और उनका कहना है कि इनके इस्तेमाल से शत्रु के हवाई हमला करनेवाले विमान नष्ट किये जा सकते हैं । युद्धोत्सुको ने यह अनुभव किया कि विमान जब कहीं जाते हैं तो अपनी ही आवाज से लोगों को सावधान कर देते है, क्योंकि विमानो की गति ध्वनि की गति से (७५० मील) कम होती हैं ।

इसलिए उन्होंने यह चेष्टा शुरू की कि आवाज की गति से भी तेज विमान बनाये जायँ ताकि उनकी आवाज आदमियों तक पहुँचने के पहले वे पहुँच जायँ। बिना आवाज के विमान बनाने की भी कोशिश की गयी। वी १ की गति शब्द की गति से कम थी, वी २ की अधिक, पर इन दोनों में चालक नहीं बैठ सकते थे, दोनों चालकहीन थे। इसलिए अब जेट सञ्चालित विमानों की गति शब्द की गति से अधिक करने की चेष्टा की जा रही है। विमान और उसकी सारी चीजें मछली के आकार की बनायी गयी हैं ताकि हवा का विरोध नगण्य रहे। पर इस आकार के यानों को जमीन पर उतारते समय बड़ा खतरा हो जाता है। इस तेजी से पैदा होनेवाली गरमी से यानों के ही जल उठने की संभावना है। ये सब दिक्कतें केवल राकेट में नहीं रहती इसलिए वैज्ञानिक राकेटों में मनुष्य के प्रवास की भी कल्पना कर रहे है।

समुद्र पर हवाई अड्डा

भावी आकाश-युद्ध की तैयारी के लिए वैज्ञानिकों ने बीच महासागर में भी हवाई अड्डे बनाने की तरकीब सोच ली है और अड्डे बना भी लिये हैं। षट्कोन ६×६×२½ फुट टीन के डब्बे एक में जोड़कर ये पीपे के पुल बनाये गये है। टीनों के इस आकार के कारण लहरों का पुल पर अधिक असर नहीं होता। ३६ फुट लंबी लहरों में भी पुल टिका रहता है। इस अड्डे का नाम 'लिली' रखा गया है क्योंकि यह कमल के फुल के गलीचों जैसा समुद्र पर दिखाई देता है। इसके बीचोबीच एक सफेद लाइन रहती है जिससे यह अड्डा ऊपर आसमान से विमानचालकों को दिखाई देता है। ३ व्यापारी जहाजों में लादकर २५०० फुट लंबे

अड्डे का सामान ले जाया जा सकता और अड्डा बिछाया जा सकता है।

इसी प्रकार २०-२२ मील लंबे तैरते पुल भी बनाये जा सकते
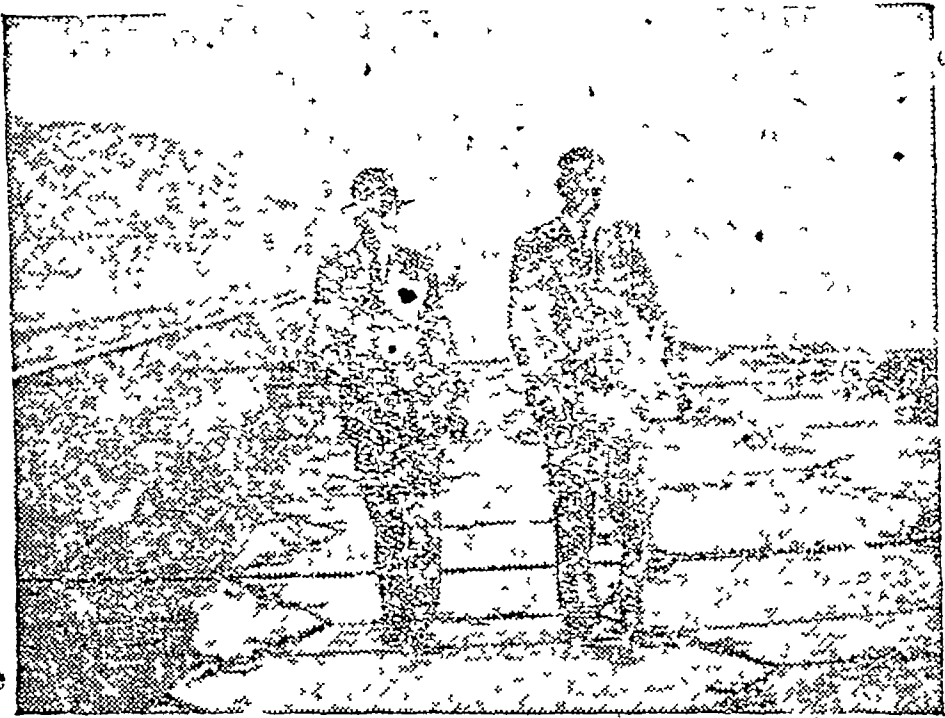
समुद्र में तैरनेवाला 'लीली' हवाई अड्डा

हैं। ब्रिटिश चैनल में ऐसे पुल बनाकर ब्रिटेन से फ्रांस जाना आसान हो जायगा। ६ टन वजन की लारियां सहन करने लायक तैरते पुल इस युद्ध में बनायें गये थे।

परमाणु शक्ति की खोज के बाद अब नये नये अस्त्रों का रूप ही बदल जायगा। परमाणु बम तो आक्रमणकारी अस्त्र है।

इसका रक्षात्मक अस्त्र ढूंढ निकालने के लिए वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं। वर्तमान परमाणु बम से १०० या १००० गुना अधिक भीषण परमाणु बम बनाना कठिन नहीं है। कुछ ही वर्षों में यह सिद्ध हो सकता है। रेडियो किरण, परमाणु शक्ति और राकेट की सयुक्त सहायता से हजारों तरह के नये नये रावणास्त्र बनाये जा सकते हैं।

रेडियो किरणे और नये नये यंत्रों की सहायता से राकेट ऐसे फेंके जा सकते है कि अपने लक्ष्य की गरमी, प्रकाश या चुबंक शक्ति से आकर्षित हो वह राकेट अपने आप लक्ष्य पर जा कर गिरे।

बड़े बड़े कारखानों की भट्टियों की गरमी से आकर्षित हो कर ऐसे राकेट अपने आप उन कारखानों के ठीक बीचोबीच जा कर गिरेंगे। ये राकेट इतने अधिक सटीक होंगे कि मान लिजिये कोई बड़ा कमरा है। उसमें एक आदमी घुसता है तो उस आदमी के शरीर की गरमी से आकर्षित हो कर राकेट ठीक उसके पास चला जायगा।

जेट विमान ५-६०० मील की गति से ४० हजार फुट ऊपर आकाश में १५०० मील दूर लक्ष्य की ओर उड़ सकते हैं।

ऐसे बम वर्षक बन सकते है जो आकाश में बहुत ऊपर, पृथ्वी के वायु मंडल के भी बहुत ऊपर, ध्वनि की गति से अधिक तेज उड़े, अपने साथ १ लाख पौंड से भी अधिक वजन के बम ले जा सके और पृथ्वी के किसी भी हिस्से पर आकाश से ही बम गिरा कर फिर अपने अड्डे पर बिना कहीं उतरे वापस आ जायँ।

यह दूर की बात है, पर इसी समय ऐसे बम वर्षक बन गये है जो ४५ हजार पौंड वजन के बम ढो सकते हैं। और ४५ हजार

पौंड वजन के बम भी बन गये हैं। १ लाख पौंड वजन का बम बनाने की सारी कागजी योजना अमेरिका में बन चुकी है।

केवल ५ वर्ष के अंदर ऐसे जेट संचालित युद्धक विमान बन जायेंगे जो ध्वनि की गति से (७५० मील प्रति घंटा) ५७ हजार फुट ऊपर उड़कर २०००० मील दूर जा सके।

रेडार, राकेट और परमाणु शक्ति मिला कर सैकड़ो तरह के नये शस्त्रास्त्र बनाये जा सकते हैं। संभव है कि शीघ्र ही परमाणु बम राकेट शक्ति से फेंके जायें और उनका नियंत्रण लक्ष्य स्थान की ओर रेडार करें। ऐसे बमो को आकाश में ही नष्ट करने के लिए रेडार राकेट प्रति बम भी बनाये जा सकते हैं। परमाणु बमो के कारखाने राकेट रेडार बमो से नष्ट किये जा सकते हैं। कहते हैं कि जर्मन वैज्ञानिको ने एक ऐसी किरण तैयार कर ली थी जो सैकड़ो मील दूर की चीज में आग लगा देती थी। यह भी कहा जाता है कि रूस को इस किरण की बात मालूम हो गयी है। इस किरण से पहले पता लग जाता है कि किधर से परमाणु बम आ रहा है। दूसरे पता लगा कर किरण खुद ही आकाश में बहुत ऊपर परमाणु बम को नष्ट कर देती है।

युरेनियम की जगह और मामूली द्रव्यो के परमाणु तोड़ कर उनके बम बनाने का प्रयत्न भी वैज्ञानिक कर रहे हैं।

सूर्य-तोप

जर्मनो ने सूर्य से भी लड़ाई में काम लेने को सोची थी।

जर्मन-दिमाग क्या क्या सोचता है इसे समझना असंभव है। जर्मनी की हार के बाद मित्र राजनीतिज्ञो और वैज्ञानिको ने जर्मनो के भावी गुप्तास्त्रो की सूची और उनको तैयार करने के लिए हुआ काम देखा तो वे एक मिनट के लिए सहम ही गये।

यदि जर्मनी इन सबको बना लेने में सफल हो गया होता तो—

जर्मनों के कई आयोजित गुप्तास्त्रों का विवरण पिछले अध्याय में दिया जा चुका है, पर सबसे अधिक कल्पनाशील और आश्चर्यातीत अस्त्र सूर्य की तोप था। इसमें जर्मन वैज्ञानिक आकाश में ५१०० मील ऊपर एक स्टेशन और प्लेटफार्म बनाकर वहां से सूर्य की गरमी की गोलाबारी पृथ्वी पर करनेवाले थे। इतनी ऊँचाई पर पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति का कोई असर न होता।
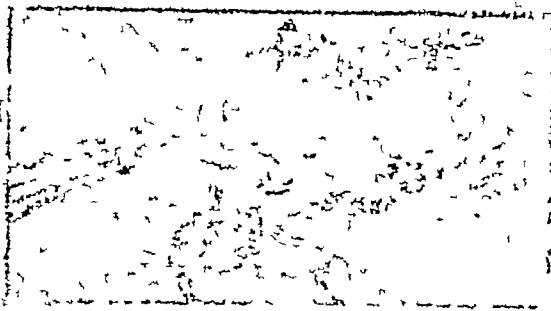
जर्मनों की 'सूर्य-तोप'

उस प्लेटफार्म पर से राकेट छोड़े जाते और भारी प्रत्यावर्तनोंसे सूर्य की रोशनी इस तरह प्रत्यावर्तित की जाती कि एक क्षणमें कोई महासागर खौल उठता या कोई शहर भक से जल जाता। इन सूर्य तोपों से पृथ्वी पर भाप और बिजली बनाने के कारखाने बनाने की भी जर्मन इंजीनियर सोच रहे थे। सूर्य तोप सोडियम धातु की और ३½ वर्ग मील आकार की होती। प्लेटफार्म उपग्रह की तरह पृथ्वी के साथ गोल गोल घूमता रहता। वहाँ रहने वालों के लिए यहाँ से आवश्यक हवा भेजी जाती। सौ पचास बरस में उस को बना लेने की जर्मन अब भी आशा रखते हैं।

रूसियों ने भी सूर्य से काम लेना शुरू किया है, पर वह विनाश क्षेत्र में नहीं, विधायक क्षेत्र में है। इसका वर्णन भविष्य की दुनिया शीर्षक अध्याय में है।

रचनात्मक विभाग

(७)

रसायन-उद्योग

इस पुस्तकके प्रथम भाग में नये नये अस्त्रों तथा गुप्तास्त्रों और उनका प्रतिकार करनेवाले अस्त्रोंके बारेमें बहुत कुछ लिखा गया। विज्ञानने अपनी जो शक्ति उनके लिए खर्च की उसका कुछ अंश जरूर संस्कृतिकी प्रगतिके कार्यमें लगेगा, पर अब जो अध्याय लिखे जा रहे हैं उनमें युद्धकालीन विज्ञानके उस अंशका विवरण है जो मानवकी सेवामें तुरत लगाया जा सकता है, युद्ध कालमें भी सेवा भावसे ही जिसका प्रादुर्भाव हुआ था।

महायुद्ध शुरू होते ही गृहक्षेत्रमें खाद्य और वस्त्र संकट उत्पन्न हो जाता है और इनके निवारणार्थ विज्ञान भी सज्ज हो जाता है। ईमानदार सरकारें प्राप्त सामग्रीका अधिकसे अधिक उत्पादन करनेका प्रयत्न करती हैं और उसका वितरण राशन बांधकर करती हैं।

इस युद्ध में भी खेतीका उत्पन्न बढ़ानेके लिए नये नये तरहके रासायनिक खाद बनाये गये। ऊसर और पड़ती जमीन में खाद्य पदार्थ उगाये गये। नये नये तरहके हल बनाये गये—मशीनके आदमी द्वारा सचालित और इच्छानुसार ऊपर नीचे होने वाले। विजलीसे चलनेवाली खेती की मशीनें बनायी गयीं। नये स्वस्थ और उत्तम मवेशी पैदा करने

के साधन ढूँढ़ निकाले गये। पौदोंकी बीमारियाँ और लकड़ी के कीड़े नष्ट करनेके उपाय निकाले गये। अन्नकी नयी जातियाँ उत्पन्न की गयीं जो अधिक उत्पादन दें (जैसे प्रयाग विश्व-विद्यालय का 'विजयलक्ष्मी 'गेहूँ')।

नयी दिल्ली की गायों की साहीवाल नस्लमें और करनाल की थारपारकर नस्लमें इतना सुधार हुआ है कि भारत की औसत गाय जितना दूध देती है उसका कमसे कम आठ गुना दूध इनमें से किसी भी नस्लकी गाय देती है।

बंगलोर की भारतीय विज्ञानशाला ने कपड़े के कारखानों की फेंके जानेवाली निकम्मी चीजोंपर कोई ऐसी रासायनिक प्रक्रिया करने की विधि ढूंढ़ निकाली कि वह जमीन में खाद के रूपसे काम में लायी जा सकती है।

पशुओं की नस्ल सुधारने के लिए भविष्य में दुनिया भर में कृत्रिम गर्भ धारण का प्रयोग बहुत व्यापक रूप से किया जायगा।

राब से शीरा बनाया जा सकता है जो चासनी के और खाने के काम आ सकता है। जमीन की नमीकी रक्षा के लिए सूखी या हरी पत्तियां, घास, गन्नेकी सीठी आदि बिछाने का उपाय भी काम में लाया जा रहा है। पौधों की उन्नति में बाधा डालनेवाले उद्भिजों का प्रारंभिक अवस्था में नाश करने के लिए भारत में ही मैथोक्जोन नामक औषधि तैयार की गयी है।

विमानो से एक देश से दूसरे देश में तरह-तरह के बीज और खेतों में होनेवाले पौधो के रोगों की दवाइयां ले जाने का काम युद्धकाल में ही शुरू हो गया है।

युद्धावश्यकता के कारण खाद्य पदार्थों को सुखाना, उसके तरह

तरह के पार्सल बनाना आदि के बारे में इतनी उन्नति हुई है कि शांतिकाल में लोगों के भोजनका प्रकार ही बदल जा सकता है।

खाद्य पदार्थों के निर्जलीकरण के कारण ही युद्धकाल में जहाजो से लाखों टन अधिक सामग्री भेजना सम्भव हो सका और युद्ध से क्षत देशों के करोड़ो क्षुधार्त नागरिकों के प्राण बचाये जा सके।

दूध, मक्खन, गोश्त, अंडे और ऊनका उत्पादन बढ़ाने के लिए भी विज्ञान की सहायता ली गयी है। चौपायों और मुर्गी-बत्तख आदि की उत्पत्ति बढ़ाने और उनकी शक्तिवृद्धि करने के लिए आयोडीन और दूध से थायरोप्रोटीन नामक दवा बनायी गयी है। इसमें गलेकी ग्रंथि (थायाराइड ग्लैण्ड) से निकलने वाला थाइरोक्सीन रस रहता है। इसको गायो को देने से उनका दूध बढ़ता है। मुर्गियो को देने से वह अडे ज्यादा देती हैं तथा उनके पर जल्दी उगते हैं—वे जल्दी अंडे देने लगती हैं। काटे जाने वाले चौपायो के बच्चो को देने से उनकी वृद्धि जल्दी होती है। नरो को देने से उनकी जननशक्ति बढ़ती है। इसका प्रयोग भेड़ों पर किया जा सकता है। शायद इससे भेड़ साल के हर मौसिम में—केवल शरत के पहले नहीं—बच्चे जना सके।

थायरोप्रोटीन के ठीक उलटी थियोरेसिल दवा खोज निकाली गयी है। इससे शरीर और शक्तिवृद्धि घटती है और परिणाम स्वरूप चमड़ा बढ़ता है। मांस बढ़ाने के लिए यह दिया जाता है। वैज्ञानिक शीघ्र ही इन दोनो औषधियो के प्रयोग मनुष्य पर करनेवाले हैं। शायद विटामिन जैसी कोई बहुत बड़ी बात एक बार फिर वैज्ञानिको के हाथ में लग जाय।

कपड़ा—खाद्य की तरह कपड़े की ओर भी ध्यान दिया गया

इन्दौर के इन्स्टीटयूट आव प्लांट इडस्ट्री में हुए प्रयोगों से यह प्रकट हुआ है कि एक्स-रे द्वारा पकाये हुए बिनौलों में ओटाई के बाद रुई का प्रतिशत भाग अधिक निकलता है और रूई की किस्म भी अच्छी होती है।

मुंगारी कपास को कीड़े से वचाने का भी एक तरीका निकाला गया है। फसलों के बीच-बीच में खीरा वो देने से कीड़े कपास के पौधों को छोड़कर खीरे के पौधो में लग जाते हैं।

नमी और कीड़ों आदि से रूई और सूतका खराब होना रोकने के लिए उसे 'एसीटिलेटेड' वनाया जाने लगा है। इससे दोनो पर वर्षों नमीका असर नहीं पड़ता। तरकारी के झोले, मछली पकड़ने के जाल, तंबू आदि इससे बहुत दिन टिकेंगे।

रसायन विज्ञान को पौधों में लगनेवाले विचित्र रोगो से लड़ना पड़ता है। निकोटीन सल्फेट जैसी दवाइयां निकली है पर कीड़े भी वड़े अजीव-अजीव होते हैं। एक कीड़े ऐसे हैं कि वे आलपीन की नोंक पर रह सकते है इतने छोटे होते हैं, पर एक जाड़े में एक मादा इतने पिल्ले पैदा करती है कि सारा पृथ्वी का एक चक्कर लग सके। ये पत्तो का रस चूसते है और शहद की तरह कोई चीज बाहर फेंकते हैं। इस चीज के लोभ से चीटियां इनकी रक्षा करती हैं। मनुष्य जिस तरह गायों को पालकर दूध निकालता है उस तरह चीटियां इनको पालकर 'शहद' निकालती हैं!

रसायन युग

रसायन विज्ञान ने तो आज दुनिया को एक दम बदल डाला है। शायद औद्योगिक क्रांति से भी वड़ी क्रांति इसने दुनिया मे की है। आज हम यह नहीं कह सकते कि दुनिया की किस चीज

से कल कौन सी दूसरी चीज नहीं बन सकती। रसायन उद्योग से मनुष्य रोज गृहजीवन में फायदा उठाता है, पर यह जाने विना कि रसायन शास्त्र ने इसके लिए क्या किया है।

रसायन प्रयोगशाळा, कृषि और उद्योग व्यवसाय के कारखाने इन तीनों का ऐसा गठ बंधन हो गया है कि अमेरिका में इसके लिए एक नया विज्ञान ही उत्पन्न हो गया है। इसे वहां केमर्जी कहते हैं। आधुनिक कारखानों और प्रयोगशालाओं की खोजों के परस्पर संबंध पर तो अलग किताबें लिखी जा सकती हैं और लिखी भी गयी हैं।

किनीन की और उसके कारखाने चोरी से ब्राजील से डच जावा में ले जाने की कहानी, रबर के कारखाने की पापमय कहानी, कृत्रिम रबर और कृत्रिम पेट्रोल बनाने की कहानी, खून को सुखा कर पाउडर करनेकी कहानी और १९१४-१८ में मित्रो के टी० एन० टी० (ट्राइ नाइट्रो टूलोल) विस्फोटक के लिए टूलोल बनाने के प्रयत्न की कहानी—ये एक एक कहानियां एक एक पुस्तकाकार में निकल सकती हैं।

प्रथम महासमर में जर्मनों को मित्रो के घेरे के कारण चीली से शोरा (साल्ट पीटर) मिलना बंद हो गया। साल्टपीटर विस्फोट के लिए आवश्यक नाइट्रोजन देता था। इसी आवश्यकता के वशीभूत हो कर जर्मन प्रोफेसर हेबर ने हवा से नाइट्रोजन अलग करने की पद्धति ढूंढ निकाली थी। हेबर ने ही बाद में जहरीली गैस भी बनायी।

कारखाने और प्रयोगशाला की तरह खेत और प्रयोगशालामें भी संघर्षात्मक सहयोग चलता है। खेत या भूगर्भ जो प्राकृतिक उत्पादन और खनिज पदार्थ देते हैं उनका खर्च जमा से अधिक हो रहा

है, इस लिए उन चीजों को कृत्रिम रूप से बनाने के लिए कारखाने प्रयत्न करते हैं। दोनों में यही संघर्ष चलता है। कृत्रिम रूप से बड़े पैमाने पर तैयार किये गये पदार्थ प्राकृतिक पदार्थों से सस्ते पड़ते हैं। प्राकृतिक उत्पादन की कमी बेशी से दाम में जो परिवर्तन होता है उस का झगड़ा कृत्रिम पदार्थ में नहीं रहता। जिन प्राकृतिक पदार्थों के लिए दूर दूर के उपनिवेशों पर आश्रित रहना पड़ता है उनका अपने देश मे कृत्रिम रूप से उत्पादन युद्धकाल में तो अत्यंत लाभदायक और आवश्यक हो जाता है!

दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं जिस का रसायन शास्त्र आधार वस्तु के रूप में उपयोग न कर सके। जर्मन कोयले और लकड़ी से तथा अमेरिकन कोयले, लकड़ी और पेट्रोल से न मालूम क्या क्या चीजें बना लेते हैं। हवा, पानी और नमक से न मालूम क्या-क्याचीजें बन सकती हैं। कल किसी घास-फूस या मछली का भी उपयोग आधार वस्तु के लिए हो सकता है। एवम् जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिससे कोई आवश्यक पदार्थ रसायन प्रयोग-शाला में तैयार न हो सके।

कृत्रिम और नकली ये शब्द बुरे समझे जाते हैं, पर ऐसा समझना ठीक नहीं। जर्मनी ने यदि कृत्रिम रबर और कृत्रिम पेट्रोल तथा नकली कपड़े न बनाये होते तो युद्ध अधिक दिन चल ही नहीं सकता था। इन सब बातों ने एक चीज साफ कर दी है जो हम पहले ही बता चुके है। आधुनिक युद्ध वैज्ञानिकों का युद्ध है। तलवार से अधिक बलशाली टेस्ट ट्यूब होता है।

किसी चीनी वैज्ञानिक ने पहले पहल गंधक,शोरा और कोयले से बारूद बनायी। इस बारूद ने इतिहास को ऐसा पलटा दिया कि सरदारशाही का नाश हो गया। रसायन वैज्ञानिक तो यह दावा

करते हैं कि औद्योगिक क्रांतिका जो आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव पड़ा उससे अधिक रसायन युग का प्रभाव पड़ा है। आज बिजली आदि ने मनुष्य के स्वास्थ्य और सम्पत्ति की जितनी वृद्धि की उससे अधिक वृद्धि कृत्रिम रसायनों के युग से हुई है। नयी मशीनें और नये पदार्थ हमारे जीवनके ढंगपर एक ही प्रकार का असर डालते हैं। यदि प्लास्टिक आदि हलके पदार्थ न बनते तो विमानों और तेज चलनेवाली ट्रेनों में इतनी तेजी से सुधार कदापि न हो सकता।

लोहा, कोयला और सूक्ष्म होने के कारण औद्योगिक क्रांति में तो ब्रिटेन सबसे आगे निकल गया, पर पिछले ४० साल में औद्योगिक रसायन शास्त्र ने पुतली घर, शृंगार की चीजों, रबर, तैल, इंधन, चमड़ा और कृषि पर और करीब करीब सभी छोटे मोटे उद्योग धंधों पर कब्जा सा जमा लिया है। आज तो मशीन उद्योग रसायन उद्योग पर ही निर्भर करता है।

ब्रिटेन ने शायद यह समझा नहीं है और इसीलिए अमेरिका इस विषय में उससे बाजी मार रहा है। जर्मनी ने भी एक बार इसे चमका दिया था। कोल टार उद्योग और जर्मन व्यापारी कंपनियों के आर० बी० फार्बेन संघ को ब्रिटेन भूल सकता है? मजा यह है कि पर्किन नाम के एक अंग्रेज ने कोल टार से एनीलीन रंग बनाने की युक्ति ढूंढ निकाली, पर ब्रिटिश कारखानदारों ने उसकीओरकोई ध्यान नहींदिया। गैस के कारखाने और काजल जैसे व्यर्थ की चीजों में भरी यह सम्पत्ति जर्मनों ने तत्काल देख ली और उसका पूरा पूरा उपयोग करना उन्होंने शुरू किया। इसी कोल टार से धन खर्च कर रिसर्च करा कर जर्मनोने दुनिया भर के सब से बड़े रंग के कारखाने, विस्फोट के कारखाने और तेल इत्र के

कारखाने खड़े किये। कोल टार के गैस पदार्थों से रंग, इत्र, सल्फा निलामाइड दवा, सल्वार्सन, अति विस्फोटक पदार्थ आदि आदि क्या क्या चीजें जर्मनों ने बनाना शुरू किया। जर्मनो ने इससे ब्रिटेन को बुद्धू बनाने की भी कोशिश की। ब्रिटेन से उसने कहा कि हम तुम्हें सल्फानिलामाइड दवा का रहस्य बता देंगे, तुम हमें उपनिवेश दे दो। ब्रिटेन ने समझा हमारे वैज्ञानिकों को इतनी बुद्धि कहां कि वे इसका रहस्य जान लें। उसने जर्मनों की शर्त स्वीकार करने की ठानी। यह दवा नींद न आने पर बड़ी लाभप्रद होती है, पर फ्रेंच वैज्ञानिकों ने इस बीच उस पर प्रयोग कर उसे बना डाला।

जर्मनों ने इस उद्योग को बहुत आगे बढ़ाया था। उसके पास दर्जनों रहस्य और पेटेण्ट थे। प्रथम महायुद्ध के बाद ब्रिटेन और अमेरिका को ये सब रहस्य मालूम हो गये। कुछ लोगों का कहना है कि औद्योगिक रसायन के इन जर्मन रहस्यों का ही केवल इतना मूल्य था कि केवल उसी के लिए जर्मनों से लड़कर उन्हें हराना अधिक महँगा न पड़ता। और वह पड़ा भी नहीं। प्रथम महासमर के बाद ब्रिटेन ने इन पेटेण्टों को कारखानदारों के हाथ नीलाम कर दिया। इससे कारखानदारों का उनपर एकाधिकार हो गया। अमेरिका ने ऐसा नहीं किया। वहाँ की सरकार ने केमिकल फाउण्डेशन नाम का एक विभाग ही बना डाला और कम्पनियों को रहस्य बताकर उसके लिए लाइसेंस दिये। लाइसेंस की फीस से रसायन विज्ञानकी और अधिक उन्नति के लिए छात्रों को वजीफे दिये गये और अनुसन्धान कार्य कराया गया।

द्वितीय महासमर के बाद और अधिक जर्मन पेटेण्ट अब मित्रों को मिले होंगे। अब यह देखना है कि उससे कौन क्या

लाभ उठाता है। अब तो मैदान में रूस भी है। जापान के पेटेण्टो का उपयोग तो केवल अकेला अमेरिका ही करेगा।

अमेरिका में १६३९ से १९४४ तक औद्योगिक रसायन में ६० फी सदी वृद्धि हुई। ४ वर्ष में रसायन खरीदने में अमेरिका ने १० अरब डालर खर्च किये। तीन साल में २७ अरब ७० करोड़ डालर के नये रसायन बनाये गये। पेनिसिलीन और डीडीटी का उत्पादन इन्हीं उद्योगो का एक आश्चर्यजनक परिणाम था। युद्धकाल में कृत्रिम अल्कोहोल का उत्पादन चार गुना बढ़ा। कृत्रिम रबर बनाने में लगनेवाले काजल का उत्पादन दूना हुआ। खाद का उत्पादन भी काफी बढ़ा। रङ्ग, बार्निश और लेक्वेर के कारखाने भी दुगुने हो गये। प्लास्टिक और रेज़िन का उत्पादन तो चौगुना हुआ।

द्वितीय महासमर में औद्योगिक रसायन विज्ञान ने जो एक और अद्भुत वस्तु जगत को दी वह 'पर्सपेक्स' है। यही एक पदार्थ था जो शीशे के ही समान अथवा उससे कुछ अधिक पारदर्शी था, किंतु शीशे की तरह इसके टूटने का डर नहीं था और आवश्यक आकारों में इसे आसानी से ढाला या मोड़ा जा सकता था। इसके विमान चालक के केबिन, पर्यवेक्षण के गुम्बद, तोपो की बुर्जियां आदि बनायी जाती थी। शांतिकाल में इससे बहुत लाभ होगा। पर्सपेक्स का एक और गुण प्रकाश की किरणों को मोड़ना है। अतएव पर्सपेक्स से ऐसी मुड़ी हुई नलियां तैयार की जा सकती हैं जिनके भीतर प्रकाश की किरणे मोड़कर डाक्टर मनुष्य के मुँह, कान आदि छिद्रों के किसी भी अँधेरे भाग का परीक्षण कर सकते है। खमदार खिड़कियां तैयार करने के काम में भी पर्सपेक्स का विशेष रूप से उपयोग किया जा सकता है।

पर्सपेक्स में रंग मिलाकर उसे किसी भी रंग का बनाया जा सकता है और उसकी पारदर्शक शक्ति वैसी ही कायम रह सकती है। इसलिए कमरों, आलमारियों, दरवाजों की सजावट के लिए इसकी प्रकाशवाहिनी रंगीन खमदार नलियां देखने में बहुत सुन्दर लगेंगी।

पर्सपेक्स पर खरोंचके चिह्न बहुत जल्दी पड़ जाते हैं और उसका तल शीशे की भांति कड़ा नहीं होता। दरवाजों और खिड़कियों से अधिक उसका उपयोग इसीलिए शो केसों में होगा। इस खरोंच पड़ने पर भी शायद कोई उपाय जल्द ही वैज्ञानिक ढूंढ़ निकालेंगे और फिर पर्सपेक्स शीशे का पूरा काम देगा। फिर उसके चश्मे के लेन्स भी बनाये जा सकेंगे। पर्सपेक्स लकड़ी की भांति आरी से चीरा जा सकता है और रुखानी से उसे काटा और बर्मे से उसमें छेद किया जा सकता है। वह सांचे में ढाला और पत्तरों पर फैलाया भी जा सकता है और हवा से किसी भी आकार में फुलाया भी जा सकता है। उसकी चादरें गरमाकर मोड़ी भी जा सकती हैं। फिर

कला और सौंदर्य के [illegible] में भी पर्सपेक्स मानव के लिए एक अमूल्य देन साबित हो सकता है।

जापान के युद्ध में कूदने से जूट, लाह, रबर आदि के बिना अमेरिका का काम ही रुका। यूरोप से आनेवाले काग, दक्षिण अमेरिका से आनेवाला टैनिन आदि भी जहाजों के डूबने से कम मिलने लगा तब अमेरिका के केमरजिस्ट आगे आये। खेत, प्रयोगशाला और कारखाने का यह वैज्ञानिक एक साथ उपयोग करता है—केमिस्ट्री, एग्रिकल्चर और इंडस्ट्री को यह मिलाता है।

इन केमरजिस्टों ने अमेरिका में बीसों तरह का नकली रबर

बनाया। सोयाबीन के तेल से भी रबर बनाया। कार्बन की जगह सिलिकन का अणु आधार बनाकर एक ऐसा कृत्रिम रबर बनाया जो—६० से +५७% तापमान में भी अपनी लचक नहीं छोड़ता। केवल इस बात में वह प्राकृतिक रबर को भी मात कर देता है। कृत्रिम लाह बनायी। नयी-नयी जमीनों पर जूट पैदा किया गया। केमरजिस्ट कोई चीज रद्दी नहीं होने देता। सेव के छिलके से ग्लिसरीन, सोयाबीन के तेल से रंग और प्लास्टिक, रूई की डाक्टरी पट्टियां आदि इन वैज्ञानिकों ने बनायी।

समुद्र से मैग्नेशियम और ब्रोमीन निकालने के बड़े बड़े कारखाने खुल गये हैं।

केवल खनिज पदार्थ पर अवलंबित रहकर किसी भी देश का काम नहीं चल सकता क्योंकि खनिज पदार्थों का उत्पादन खर्च से कम रहता है। जमीन चाहे जितनी उपजाऊ बनाना आदमी के हाथ में है। वहाँ से धातुओं की जगह तरह तरह के प्लास्टिक और पेट्रोल की जगह तरह तरह के बीज तैलों का उत्पादन चाहे जितना बढ़ाया जा सकता है।

अमेरिका में 'ब्यूटिल रबर' नाम का एक कृत्रिम रबर बनाया गया है। इसके मोटर के ट्यूब बनेंगे तो उनमें आजकल के ट्यूब से १० गुने अधिक समय तक हवा रहेगी। साल में उसमे केवल तीन या चार बार हवा भरनी पड़ेगी और पङ्कचर होने के बाद भी मोटर मीलों चलती रहेगी। ब्यूटिल रबर रसायनों, सूर्यप्रकाश और आक्सीजन के परिणाम का मामूली रबर से अधिक सामना कर सकता है। छेद करने पर भी वह बहुत समय तक जुटा रहता है। ब्यूटिल पेट्रोलियम से बनता है। इससे वाटर प्रूफ कपड़े, तंबू, नल और ड्रेपरी बनायी जा सकेगी।

जर्मनों ने ऐसा कृत्रिम रबर तैयार कर लिया था जो बहुत हलका था और जो आग से जलता न था। स्पंज की तरह फैलता भी था। इसके मोटर टायर बनते थे क्योंकि गोलियों का उस पर कोई असर नहीं होता था।

कोयले से २००० तरह के नये उद्योग निकाले गये हैं। खानों से निकले कोयले को साफ करते समय उस में से गैस निकलती है और कोल टार निकलता है। कोल टार से जो चीजें बनती हैं उनके ६ भाग किये जा सकते हैं। पहले भाग में बेनजीन, टूलीन और और जाइलीन आते हैं। ये रंग और विस्फोटक पदार्थ बनाने तथा पेट्रोल के साथ मिलाने के काम आते हैं। दूसरे भाग से केवल तरह तरह के रंग बनते हैं। पौधों से बनने वाले रंगों की करीब करीब पूरी जगह दुनिया भर में अब इन रंगों ने ले ली है।

तीसरे भाग से दवाएं बनती हैं। एस्पिरिन, बेहोशी की दवाएं मेपाक्रिन आदि इसी से बनते हैं। तरह तरह के विटामिन भी इससे बनाये गये हैं। चौथा प्रकार कृमिनाशक तेलों आदिका है। पांचवे प्रकार में सैकडों तरह के इत्र, कृत्रिम महक (एसेन्स) और कृत्रिम स्वाद (फ्लेवरिंग) बनाये गये।

अंतिम प्रकार प्लास्टिक का है और यही सबसे महत्त्व का है। कोलटार और फार्मल्डिहाइड से फेनाल राल बनायी जाती है जिससे प्लास्टिक बनते है। एसिटिलीन से कृत्रिम रबर बनता है। नीलन, मोजे, टेलिफोन, टूथ ब्रश विमानों के हिस्से आदि हजारों तरह की प्लास्टिक की चीजें बनती हैं।

कोयले से अमोनिया भी निकलता है। इससे अमोनियम

सल्फेट का खाद, ठढे करने वाले रसायन, पानी के कृमिनाशक और धातु के उद्योग में काम आने वाली चीजें बनती हैं।

बिजली के कारखानों को कोयला लगता है। इस लिए सस्ता और अधिक अच्छा कोयला बनाने की ओर भी ध्यान दिया गया!

अब तो कोयले से मक्खन, अल्कोहोल, साबुन और गेसोलीन भी बनाया जा रहा है।

युद्धकाल के आश्चर्यजनक प्लास्टिक "पोलीथेनी" और "सिली क्वेन्रा" को खोज की गयी है और इन्हें व्यापक रूपसे रक्षा सबधी टेलीफोन, तार और समुद्री तार व्यवस्थाओं', 'हवाई जहाजों, विद्युत उद्योग तथा अन्य बहुतसे कामों में लाया गया। कृत्रिम रबड़ों के कारण प्राकृतिक रबडकी कमी की वह भारी समस्या दूर होगयी, जो मलाया, बर्मा और डच पूर्वी द्वीपसमूह पर जापान का अधिकार हो जाने से पैदा हो गयी थी। बम बनाने के गुप्त स्थानों और गैसोलीन तथा अन्तर्दहनशील इञ्जनों मे नये सुधारों के कारण वे हल्के और अधिक प्रभावशाली बन गये। समुद्र के पानी से मैग्नेशियम निकालने की नयी सफल प्रणाली उन्नत हो गयी तथा मिट्टी से अल्मूनियम निकाला गया। मैग्निशियम तथा अल्मूनियम के नये मिश्रणों से मैग्नालूमीनियम बनाया गया। ड्यूरेल्लूमीनियम के कारण हलके और तेज रफ्तारवाले बमवर्षक तथा लड़ाकू वायुयान बनाने में सहायता मिली और इससे वायुयानो के निर्माण में एक क्रान्ति पैदा हो गयी।

भारत में युद्धकाल में इस विषय के २०० से भी अधिक अनुसंधान विषयक समस्याओ की छानबीन हुई है। वैज्ञानिक और

औद्योगिक डायरेक्टरों की रसायनशालाओं के कुछ काम का उल्लेख नीचे किया जाता है।

धातु-सम्बन्धी अभाव की समस्या सुलझाने के लिए धातुओं के स्थान पर प्लास्टिक काम में आने लगा और इसमें अनेक प्रकार के सुधार भी हुए। अमेरिका, इङ्गलैंड और जर्मनी में प्लास्टिक पदार्थ कृत्रिम राल से बनाये जाते थे। जिन पदार्थों की आवश्यकता राल के लिए पड़ती थी, वे भारत में पर्याप्त संख्या में प्राप्त नहीं किये जा सकते थे। जिन देशी साधनों से प्लास्टिक प्राप्त किया जा सकता था उनकी छानबीन की गयी। जेटीसन टैंक और प्लास्टिक के डिब्बे, जिन पर पेट्रोल का प्रभाव नहीं पड़ता था, जूट और चमड़े से बनाये गये। चीनी की सीठी के प्लास्टिक की उन्नति मकान आदि बनाने के लिए की गयी। चपड़ा और जूट का प्रयोग रेशे के तख्ते, धातु विहीन डिब्बे, परिचयकारी बिल्ले और पृथग्न्यासक पदार्थों के बनाने में किया गया। विद्युत यन्त्रों के लिए सींग का प्लास्टिक तैयार किया गया। रेंडी के तेल और चिथड़ों से ट्यूब बनाये गये। भिलावा और अखरोट से इनैमल, पीतल की वार्निश, अन्य वार्निश, तथा प्लास्टिक बनाये गये। तेल प्लास्टिक बनाने के लिए तिलहन के तेलों की छान-बीन की गयी।

भारत में तिलहन की पैदावार सबसे अधिक होती है। युद्ध के कारण भारत के तिलहन का निर्यात समुद्रपार के लिए बन्द हो गया और इससे तिलहनके व्यापारको भारी धक्का लगा। वनस्पति तेलों से मशीनों के पुर्जों में चिकनाई लाने वाले तेल, अन्तर्दहन शाल इञ्जनो के लिए ईन्धन की उत्पत्ति एक और नयी प्रकार की सफलता थी जो विभिन्न औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के

लिए प्राप्त की जा सकी। इन अनुसंधानो के परिणाम स्वरूप देश में हजारों गैलन वनस्पति तेल का उत्पादन किया गया।

गैस से रक्षा करने वाला कपड़ा पूर्णतया देशी पदार्थों से बनाने के लिए एक सफल विधि का आविष्कार किया गया। अधिक खिचाव के प्रज्वलनकारी तार की परीक्षा करने का यन्त्र, पेट्रोल रखने की धातु की टंकियो की वार्निश, रबर की टंकियों की मरम्मत के लिए सीमेंट, ऐसी नालियां जिन पर पेट्रोल का असर नहीं होता, पेट्रोल रखने के पात्र, पेट्रोल पम्प डायफ्रास, पेट्रोल की टंकियो को बद करने के पदार्थ, स्मोक कैंडिल, संकट-सूचक यंत्र, गरम खाद्य रखने के पात्र, पानी को ढूंढ निकालने वाले मिश्र पदार्थ और नारियल की जटा से तैयार होने वाला पैकिंग का सामान—ये सब चीजे वायुसेना के लिए तैयार की गयीं। दक्षिण पूर्वी एशिया के रणक्षेत्र में सब सेनाओ के लिए पाइरेथ्रम क्रीम और पाइरेथ्रम इमल्सिफायर तैयार किये गये। एक प्रकार के आग बुझाने वाले यन्त्र और चमकदार रग रक्षा कार्यों में व्यापक रूप से काम में लाये गये।

खली से, विशेषतः मूँगफली की खली से, रेशे, नीम, ब्राह्मी, ककरसिंघी, भिलावा आदि से रासायनिक औषधियाँ, प्रोड्यूसर गैस प्लांट, चमड़ा कमाने की अर्धकृत्रिम चीजे, देशी साधनो से कृमिनाशक पदार्थ, अन्य पौधों से रबड बनाने की विधियाँ मालूम की गयीं। प्राकृतिक गोंदो का तरह-तरह से उपयोग किया गया।

सरकार ने जिपसम से गन्धकाम्ल (सल्फ्यूरिक ऐसिड) तैयार करने तथा बिहार के तावे के कारखानो में तैयार किये गये सल्फर डाइआक्साइड के उपयोग के प्रस्तावों का इस आधारपर विरोध

किया कि उन्हें कार्यान्वित करने मे बहुत खर्च होगा। बलूचिस्तान की गन्धक की खानों का उचित समय पर उपयोग किये जाने से खान से निकले हुए गन्धक के शोधन की प्रक्रिया को उन्नति में सहायता मिली और भारत में युद्धकाल में गन्धक के सम्बन्ध की चिन्ताजनक स्थिति को सुधारने में 'भी कुछ सहायता मिली।

विदेशों से औषधियों और रंगों का आना बन्द होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के उद्देश्य से देश के भीतरी साधनों के उपयोग के लिए अन्वेषण की योजनाएँ कार्यान्वित होने लगीं। बूचडखाने के रद्दी मास से शरीर की ग्रन्थियों से प्राप्त होनेवाले पदार्थ तैयार किये गये। अटोक्सिल और कारबर्सोन सुप्राप्य कच्चे माल से तैयार किये गये। देश के जङ्गलों से विभिन्न वनस्पति जन्य रङ्ग तैयार किये गये।

व्यर्थ समझकर फेंकी जानेवाली चीजों का युद्ध में उपयोग करने के लिए विज्ञान फिर सामने आया। पन्नी से टिन, जस्ते और अल्युमिनियम के रद्दी टुकड़ों से हवाई जहाज बनाये गये। जाल में लगानेवाली पिनों से कटीले तार बनाये गये।

रूई से सडकें, मीठे आलू से 'लीपस्टिक' चरबी की जगह सोयाबीन, मक्के के श्वेतसार से पारदर्शक कागज, रद्दी अन्न से सौन्दर्य वर्धक साबुन, विस्फोटक, रंग और मोटर चलाने का तेल बनाया गया।

बिजली के कारखानों में जो बारीक राख बेकार समझकर फेंकी जाती थी उससे अब मकान बनाने की ईंटे और तख्ते आदि बनाये जा रहे हैं। इसमें आग नहीं लगती और उसपर पाले या नमी का असर नहीं होता। यह आरीसे चीरा भी जा सकता है और इसमें कीले और स्क्रू भी लगाये जा सकते हैं।

कारखानोंका काम

हमने पिछले अध्यायों में हजार तरह के युद्धास्त्रों का विवरण दिया, पर इनको बनाने वाले कारखाने और शिल्पी न होते तो इनका निर्माण होना असम्भव था। कारखानो की उत्पादनशक्ति बढ़ाने और शिल्पों की कुशलता बढ़ाने में भी विज्ञान पीछे नहीं रहा। कारखानो की शक्ति इतनी बढ़ी कि अमेरिका में दो दिनमें एक महादुर्ग और ३ युद्धपोत प्रति दिन तैयार करने का काम युद्धके आखिरी दिनो में होने लगा था। कठिन से कठिन लोहे और लकड़ी को अपने सामने मोम से भी मुलायम बना देनेवाली मशीने बनायी गयी। लोहेको काटने और उसपर लिखने के लिए आक्सी एसिटिलीन पेन्सिल का आविष्कार हुआ।

युद्ध सामग्री बनाने के लिए बिलकुल अलग कारखाने बनाये जाते तो प्रपञ्च बढ़ जाता। पहले के शान्तिकालीन कारखानो में ही परिवर्तन कर युद्ध सामग्री तेजी से बनायी जाने लगी। ग्रामो-फोन कम्पनियो में फ्यूज और फ्यूज बक्स, बिजली घरों में बन्दूकें और गोले, चीनी के कारखानोंमें आर्मर प्लेटें और खेती के कार-खानों में टङ्कों का निर्माण किया गया।

कारखानों में काम करनेवाले मजदूरो का कौशल तौलने के लिए विज्ञान ने तराजू बनाये। उचित व्यक्ति को उचित कार्य देनेके लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण के तरीके निकाले गये।

(८)

चित्र और ध्वनि-आलेखन

जल, स्थल और आकाश युद्ध की तरह प्रचार युद्ध में भी विज्ञान ने पूरी सहायता की और आश्चर्यजनक प्रगति की। रेडियो टेलिविजन, टेलिप्रिंटर, फोटोग्राफी, ध्वनि आलेखन (रेकार्डिंग) आदि सभी इस सेवा में लग गये थे। कबूतरों के जरिये समाचार पहुँचाना तो अब इतिहास की बात हो गयी है, यद्यपि जङ्गलों आदि में उनका कुछ मामूली सा उपयोग अब भी किया जाता है। रेडियो अब केवल वार्तालाप का साधन नहीं रहा, वह शत्रु राष्ट्र की प्रजा का हिम्मत-हौसला नष्ट करने के लिए एक मनोवैज्ञानिक अस्त्र भी हो गया है। लौटी हुई ईथर की लहरों का अंकन—मापन अब सर्वत्र टेलिप्रिंटर जैसी ही मशीनों से होता है।

इस युद्ध में फिल्मों का खूब उपयोग हुआ। सैनिकों को छोटी से छोटी बात भी फिल्मों द्वारा सिखलायी जाती थी।

सैनिकों को शिक्षा देने में विज्ञान ने पूरी सेवा की। रेकर्डों और फिल्मों द्वारा शिक्षा दी गयी और युद्ध का पूरा वातावरण तैयार किया जाता रहा। कारतूस के स्थानपर प्लास्टिक की गोलियां शिक्षा के लिए बनायी गयी।

फोटोग्राफी की कला ने युद्धकाल में अतीव आश्चर्यजनक उन्नति की। शत्रु देशपर जाकर वैमानिक फोटो लेते थे। ११ जून

१९४४ को ब्रिटिश वैमानिकों ने जो फोटो लिये उनसे पता लगा
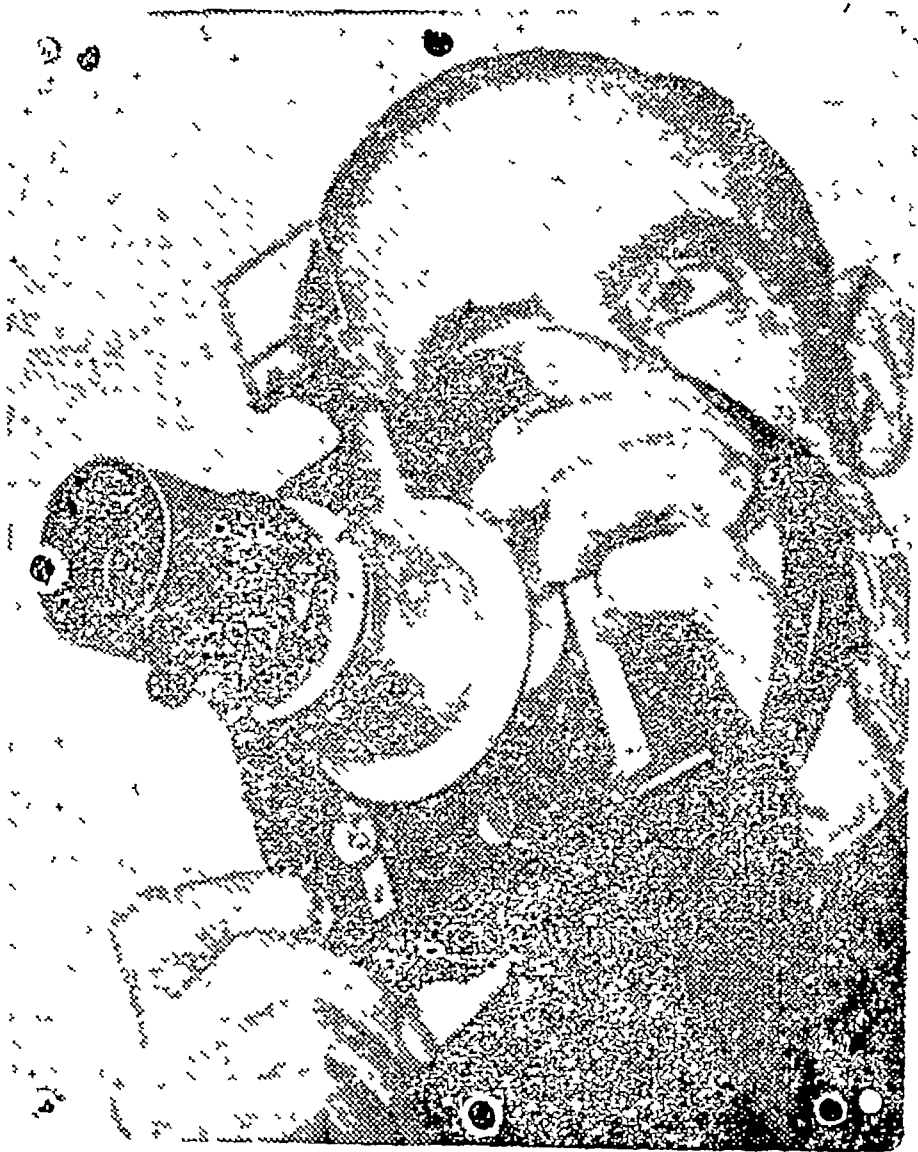
कि जर्मन कोई नये छोटे-छोटे प्लेटफार्म बना रहे हैं ताकि कोई

नया अस्त्र फेंक सके। १३ जून को ब्रिटेन पर उड़नबम बरसना शुरू हुआ।

मित्र वैज्ञानिकों ने ४८ इञ्ची टेलिफोटो के केमरा का एक लेन्स बनाया है जिससे १०० मील की दूरीपर का फोटो आसानी से लिया जा सकता है। आज से ५० गुने अधिक शक्तिशाली १० करोड़ वोल्ट के एक्सरे बनाये गये हैं। बिजली का एक ऐसा मापक बनाया गया है जो १० लाखांश इञ्च नापता है।

कठिन युद्ध भूमियों का मानचित्र बनाने के लिए फोटोग्राफी ने बड़ी मदद दी। वर्मा में मास्क्विटो वायुयानों की विशेष उड़ानों द्वारा विश्लेषण के लिए १ लाख फोटो उतारे गये। इन्हीं पर से अनेक रंगो के नक्शे तैयार कर ५,१०,००,००० चित्र तैयार किये गये। इन चित्रों से फ्रांस और जर्मनी के क्षेत्रफल के बराबर भूमि को ढका जा सकता है। चलते फिरते रोटरी छापेखानों ने प्रतिघंटे ५,००० के हिसाब से चित्र छापने का काम किया। एक दस्ते ने दो मास में १,६०,००० मान चित्र तैयार किये।

किरण विज्ञान

जब सफेद रोशनी किसी त्रिकोण कांच के अन्दर से भेजी जाती है तो सफेद रंग का विश्लेषण होकर लाल, पीला, नारगी, भूरा, नीला और बैंगनी रंग अलग दिखाई देते है। ये सब प्रकाश-किरण होते हैं। लाल के बाद ऊष्णता के किरण (इन्फ्रा रेड—हीट किरण) होते है। युद्धकाल में इन किरणों का उपयोग शीघ्रता से वारनिश सुखाने, फल और तरकारियां सुखाने, बीज को कृमिरहित करने, गेहूं के घुन को नष्ट करने, कुत्तोपर की मक्खियां मारने, पेट आदि का दर्द कम करने, अंधेरे या कुहरे मे

फोटो लेने, चित्रों और कागजों की चोरी की नकलें पहचानने, शत्रु का कैमोफ्लेज पहचानने और चोरों तथा तोड़-फोड़ करने वालों को पकड़ने में किया गया है। रोटिया तैयार करने की भी इसकी मशीने बनी हैं। जाडो मे मोटर के इञ्जिन गरम रखने का काम भी इससे लिया जा रहा है। सिपाहियों के कपड़ोंपर के कृमि मारने के लिए भी इसका उपयोग किया गया है। इन किरणों को वैज्ञानिक 'काली रोशनी' कहते हैं। स्पेक्ट्रम ने वैज्ञानिक क्रांति की है। प्रकाश, क्ष-किरण, रेडियो, टेलिविजन आदि इसी की देन है अभी अछूता बहुत बड़ा भाग इसमें वैज्ञानिकों के लिए बचा है।

जर्मनो ने युद्ध के आखिरी-आखिरी दिनो में इन्फ्रारेड फोटोग्राफी की कला में बहुत उन्नति की थी। काफी दूरी से उससे फोटो लिये जाते रहे। जर्मनो ने एक और किरण का आविष्कार किया था। यह ८८ मिलीमिटर तोप की गोलाबारी के साथ-साथ ही फेका जाता था और इससे टकों के चालक अन्धे हो जा सकते थे। इन्फ्रारेड सर्चलाइट का यह उपयोग रात में टंकों के लिए घातक सिद्ध हो सकता था। जर्मनों ने कुछ ऐसे किरण भी बना लिये थे जो सैकडो मील दूर आग लगा देते थे।
अन्धो को पढाने के लिए सरकार की सहायना से एक नया तरीका भी जर्मनों ने ईजाद, किया था।

ली द फारेस्ट नाम के एक अमेरिकन वैज्ञानिक ने 'आडियन' नाम की एक नली बनायी थी। बेतार के संदेशों को ध्वनि विस्तारकों की सहायता से सुनने का काम यह करती है। इसका महत्त्व रेडियो, बेतार का टेलिफोन, टेलिफोटो, सवाक चित्र, टेलिविजन (दर्शन) और रेडार जितना ही माना जाता है। युद्ध काल में

इसका उपयोग प्लास्टिक प्लाइवुड को जल्दी गरम करने, कृत्रिम बरसाती कोट का मसाला कपड़े पर बैठाने, टायरो को ठीक करने और मांस पकाने में किया जाता रहा। इसी 'आडियन' की सहायता से दरवाजा खोलने वाला, गोदामों की रक्षा करने वाला और सामान के पैकेट अलग करने वाला विद्युत-नयन बनाया गया था। इसी की सहायता से शांतिकाल में कुहरे के पार देखने का अंधड या अंधेरे में विमानों को जमीन पर उतारने का और गाड़ियों को टक्कर से बचाने का, मोटरों में बेतार के टेलिफोन बैठाने का और रेडियो से 'शक्ति' ब्राडकास्ट करने का काम लिया जा सकेगा।
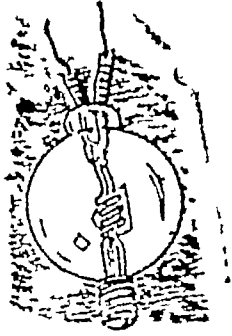
'माइक्रो-फिल्म

माइक्रो-फिल्में भी द्वितीय महासमर का एक आश्चर्य है। इस युद्धकाल में इसकी आश्चर्यजनक रूप से उन्नति हुई है। ये फिल्में १० फुट लंबी १६ या २५ मिली मीटर चौड़ी लपेटी रहती है। एक किताब के पन्ने की फोटो डाक के टिकट से छोटी फिल्म पर आ जाती है। हजारों मील दूर गये सैनिको को चिट्ठियाँ हवाई डाक से भेजने के लिए इनका उपयोग किया गया। अंग्रेजों ने 'एयरग्राफ' और अमेरिकनो ने वी मेल' में इसका उपयोग किया। ८५ हजार चिट्ठियो की माइक्रो फिल्म का वजन १० सेर होता था। इससे फोटो भी भेजे जाते थे जिससे सैनिकोका अपने परिवार से बड़ा हार्दिक संबंध बना रहता था। बड़े बड़े सरकारी दफ्तरों में कागज पत्र के रेकर्ड रखने में इनका बड़ा उपयोग हुआ और

होगा। बीच समुद्र में टूटे जहाजों की मरम्मत आदि के लिए उसके पूरे नक्शे आदि घंटों की देर में माइक्रो फिल्म बनकर आ जाते। खुफिया विभाग को अँगूठों के निशान का रेकर्ड रखने और स्थान स्थान पर भेजने में इससे सुविधा होगी। अमेरिका में बंकों में दाम चुकाने के लिए भेजे गये राशनकार्ड का काम सारा माइक्रो फिल्में लेकर किया जाता रहा। माइक्रो फिल्म से दुनिया की किसी भी भारी लाइब्रेरी की फोटो लेकर किताबों का पूरा उपयोग हजारों मील दूर किया जा सकेगा।

ध्वनि आलेखन का अद्भुत तरीका

द्वितीय महायुद्ध ने ध्वनि आलेखन का एक अभिनव अद्भुत तरीका दुनिया को दिया है। इसमें एक माइक्रोफोन एक एलेक्ट्रो-मैग्नेट से जोडा रहता है। चुम्बक के दो छोरों के बीच एक बहुत पतला इस्पात का तार दौड़ता है। यह रीलों पर चढ़ा रहता है। इसकी मोटाई बाल बराबर होती है। जब हम माइक्रोफोन के सामने बोलते हैं तो उसका परदा हिलता है और चुम्बक में उसी के अनुसार विद्युत् परिवर्तन होता है। चुम्बक के छोरों के बीच जो तार दौड़ता है वह भी उसी परिवर्तन के अनुसार कम ज्यादा चुम्बक बनता जाता है।

जब यह तार फिर उलटा घुमाया ,जाता है और चुम्बक उस बार यदि माइक्रोफोन की जगह लाउड स्पीकर से जोड़ा रहता है तो वही उस तार में भरी ध्वनि हमें सुनाई देती है। विमानों मे जहाँ कोई चीज रेकर्ड करनी पड़ती है इन नयी मशीनों से बड़ा लाभ हुआ है। इसमे हिलने डुलने उलटा सीधा होने से मशीन को कोई धक्का नहीं लगता। सारी मशीन का

वजन कोई डेढ़ सेर से ज्यादा नहीं होता। बैटरी से यह चलता है। ओवरकोट की जेब में आ जाता है। दफ्तरो में वापस लाकर ये बजाये जा सकते हैं। यह जेबी स्टेनोग्राफर का काम करेगा। कोई गलती नहीं हो सकेगी। चाहे जब, चाहे जहाँ, चाहे जिस मौसम से और अन्धेरे या उजाले में चाहे जितना तेज या धीमा स्वर इससे रेकर्ड किया जा सकेगा। व्याख्यान देकर बाद में बदलने और रिपोर्टरों को गालियाँ देनेवाले नेताओ की इसमे अवश्य आफत होगी। टेलिफोन पर वाहियात बाते बड़बड़ाने वालो को भी अब सभलना पड़ेगा, क्योंकि टेलीफोन के आगे यह यंत्र रख देने से सारी बातें रेकर्ड हो जायँगी। आपकी अनुपस्थिति मे भी टेलिफोन पर आया संदेश आप को मिल जा सकेगा।

संगीत की वर्तमान चूडियों की जगह तार की चूडियाँ भी अब बाजार में कुछ साल बाद आने लग सकती हैं। आप को यदि सिनेमा देखने जाना है और उसी समय का रेडियो प्रोग्राम भी सुनना है तो आप रेडियो प्रोग्राम रेकर्ड कर सकते है और बाद में सिनेमा से आकर उसे भी सुन सकते हैं। ३०० रुपये के करीब दाम में रेकार्डर मिलने लग सकेंगे।

प्रति सेकेण्ड ३ हजार लहरियो की गति तक हम शब्द सुन सकते हैं, १५ हजार तक सगीत सुन सकते हैं। इससे और ऊँची लहरियों से कृमि, कीटक, मेढ़क छोटी मछलियाँ तक मारी जा सकती है। २ लाख तक की लहरियो का रेकर्ड लिया जा चुका है। वैज्ञानिको के लिए स्पेक्ट्रम की तरह यह मैदान भी बहुत खुला पडा है। तार के ये नये रेकर्ड बहुत चलते हैं, खराब नहीं होते। तार का चुबंक निकाल कर फिर उसी तार पर दूसरा रेकर्ड लिया जा सकता है। यह चूडी केवल ३। मिनट की नहीं रहेगी, घंटों तक

लगातार रेकर्ड हो सकता है। आजकल प्राय ४ इञ्ची गुंडी में करीब २ मील लवा तार, करीब ६६ मिनट तक लगातार रेकर्ड करने लायक तार, रहता है। चूडियो की तरह टूटने का डर नही। बारबार बदलने की तकलीफ और रसभंग नहीं।

तार के इन रेकार्ड के सिद्धान्त पर टेप के रिकार्डर भी बनाये गये हैं। एक नये ढंग की और चूडी बनायी गयी है जिस पर आवाज काटी नहीं जाती पर दवायी जाती है। १६ इच की चूडी ३ घटे लगातार बजती है। इतना धीरे धीरे वह चलती है।

फिल्मों पर इतनी वारीकी से ध्वनि आलेखन करने का यंत्र बनाया गया है कि २ घंटे में ३६००० शब्दोका सदेश लिखी फिल्म एक कबूतर के जरिये भेजी जा सके। वह फिल्म खाद्य है ताकि शत्रु का डर हो तो निगली जा सकती है।

सोचने वाली मशीन

आज की दुनियो में देखने, सुनने, सूघने और हिसाब करने वाली मशीने तो बन गयी हैं, अब सोचने वाली मशीन भी बनायी जानेवाली है। विद्युतणु विज्ञान और फोटोग्राफी की सहायना से यह मशीन बनेगी। रेडार में एरियल से सकेत ले यांत्रिक रूप से निशाना साधने वाली तोपें देखकर ऐसी मशीनें बनाने की कल्पना उद्भूत हुई। आजकल की माइक्रो फिल्मे इतनी छोटी होती है कि पूरा इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका दियासलाई के आकार में आ सकता है? सारी दुनिया की छपी किताबें एक छोटे से डिब्बे मे आ सकती हैं। सोचने वाली मशीनो का उसके निर्माता डाक्टर बुश ने 'मेमेक्स' नाम दिया है। इसमें एक खाने में किताबे, अखबार, नोट्स, फोटो आदि की माइक्रो फिल्में रहेंगी।

जो कुछ देखना होगा, टेलिफोन की तरह एक कार्ड नंबर दबाने से उसकी फोटो परदे पर आ जायगी।

बुश के दिमाग में इस युद्ध में हुई वैज्ञानिक प्रगति से लाभ उठाकर कुछ और अजीब मशीनें बनाने का विचार है। मशीन के सामने बैठने की जरूरत भी नहीं। आप चाहे जहाँ हो। दिमाग में कोई नयी कल्पना आते ही रेडियो कनेक्शन माइक्रोफोन ले लीजिये और उसमें बोलिये, आपके दफ्तर में वह चीज टाइप होकर माइक्रोफिल्म की लाइब्रेरी में चली जायगी।

बुश एक ऐसा केमरा बनाने वाले हैं जो चने बराबर छोटा होगा, कपालपर पहना जायगा। चाहे जहाँ के रंगीन चित्र भी खींच लीजिये।

नयी दुनिया का रूप क्या होनेवाला है क्या कोई कह सकता है ?

सैनिक विघटन में सहायता देनेवाला एक यांत्रिक मस्तिष्क तैयार किया गया है। इसमे सैनिको के नामके छेद किये हुए कार्ड रहते हैं और बिजली से चलता है। गणित करनेवाली मशीन की तरह यह है और भारत के सदरजंगी दफ्तर में भी ऐसी एक मशीन है।

अपने आप हिसाब करनेवाली ५० फुट लम्बी ८ फुट ऊँची ३५ टनकी बिजली से चलने वाली मशीन अमेरिका में बनी है। हिसाब के जितने प्रकार आज तक मालूम हैं वे सब वह करती है। कागज के टेप पर छेदकर हिसाब पूछा जाता है इस मशीन का अब परमाणु विज्ञान, रेडियो अन्वेषण, आयतन अन्वेषण, बीमे के हिसाब, प्रकाश-दृष्टि सबंधी हिसाब आदि में बड़ा उपयोग होगा। यह मशीन युद्ध काल में अमेरिकन जल सेना के लिए

बनायी गयी थी। सूर्य मंडल संबंधी जटिल गणित इससे किया जा सकेगा।

शत्रु की दगती हुई तोपों का स्थान बताने वाला एक उठौवा यंत्र बनाया गया है। इसमें एक माइक्रोफोन आवाज सुन कर तुरत हिसाब लगा लेता है और कैथोड किरण से परदे पर निशान बना कर तोपो की दूरी बता देता हैं।

अमेरिका में एक ऐसी मशीन बनायी गयी है जो प्रशांत के टापुओं में समुद्र में आनेवाले ज्वार का समय और ऊँचाई का ठीक हिसाब कर बता देती है। आनेवाले एक साल में ज्वारो का सारा हिसाब वह करती है। ख्याल है कि यह मशीन एक दिनमें जितना काम करती है उतना १०० कुशल गणितज्ञ बैठे तभी हो सकता है।

युद्धकाल में ९ जुलाई १९४५ को जो खग्रास सूर्य ग्रहण हुआ उसका वैज्ञानिको ने बहुत उपयोग कर लिया। इससे महत्त्व का रेडियो पर्यवेक्षण और आयन स्तर का परीक्षण किया गया। आकाश में आयन स्तर सूर्य की शक्ति से ही होते हैं और रेडियो का सारा दारमदार इन्हीं पर रहता है। वैज्ञानिको को यह देखना था कि यह स्तर आयनित करने वाली सारी शक्ति सूर्य की नील नील लोहितोत्तर (अल्ट्रावायोलेट) किरणों से मिलती है अथवा और किन्हीं कणो से। इसके लिए कणिका ग्रहण (कारपस्कलर एक्लिप्स) और आलोक ग्रहण (आप्टिकल) का समय देखा गया। ६००० फुट ऊपर विमान में उड़कर भी पर्यवेक्षण किया गया। यह देखा गया कि ग्रहण काल में चद्रमा की छाया में भाप एकत्र हो गयी है। संभव है कि पृथिवी के अधिक ठंढा होने के कारण ऐसा हुआ हो। सूर्य के चारों ओर लाखों मील तक एक

प्रकाश पुंज फैला रहता है जिसे कोरोना कहते है। यह विद्युत चुंबकीय किरणे फेकता है, पर ग्रहण काल में ही दिखाई देता है क्योकि उस समय सूर्य का बड़ा प्रकाश नहीं रहता। सूर्य का तापमान ६००० रहता है तो कोरोनाका १० लाख सेंट्रीग्रेड। १६३२ के बाद यह पहला खग्रास सूर्य ग्रहण हुआ। ऐसा ही अगला ग्रहण ३० जून १६५४ को होगा जब वैज्ञानिक सोचते हैं कि अग्नि-बाणों में वे आकाश मे जा कर उसके चित्र ले सकेंगे।

ग्रहण काल में जो ज्ञान प्राप्त हुआ उससे अब रेडियो तरंगोकी लंबाई के बारे मे पहले से ही निश्चय करना, उसकी भविष्य वाणी करना संभव हो जायगा। महीनो पहले स यह निश्चय हो सकेगा कि अच्छा प्रतिबिंब पाने के लिए किन लंबाइयों की तरंगे इस्ते-माल की जायें। ऋतु की भविष्य वाणी के संबध मे ग्रहण ज्ञान से लाभ होगा।

---

(९)

चिकित्सा विज्ञान

आधुनिक युद्ध इतना अधिक भयंकर होता है कि इसमें मनुष्य चीटियो की तरह कटते-मरते-घायल होते हैं। कुछ तो जनसख्या की समस्या से और कुछ मानवीय कारणोसे युद्धमें घायल होने-वालो की सेवा शुश्रूषा का पबध अव सरकारें खुद ही करती हैं और रेडक्रास जैसी सस्थाएँ भी उनकी पूरी सहायता करती है। युद्ध शुरू होते ही युद्ध फण्ड की तरह अस्पताल फण्ड भी खोले जाते हैं। युद्धावश्यकताके कारण जिस प्रकार विविध शस्त्रास्त्रोकी अपरिमित उन्नति होती है उसी प्रकार चिकित्सा विज्ञानमें भी उन्नति होती जाती है। द्वितीय महासमरमें शस्त्रास्त्रोकी अपरिमित उन्नतिके साथ साथ चिकित्सा विज्ञानकी भी अपरिमित उन्नति हुई। इससे अगणित घायल इस वार बच गये। चिकित्साके अभावमें पिछले महायुद्धमें मनुष्य हानि वहुत अधिक हुई थी, इस वार घायलोमें प्रतिशत मृत्युकी संख्या बहुत कम रही। बहुतसे रोगोके नये नये इलाज निकाले गये। कुछ असाध्य समझे जानेवाले रोगोके भी इलाज मिले।

कृमिजन्य रोगोके विरुद्ध तो चिकित्सा वैज्ञानिको ने जेहादसा वोल दिया था और उस विज्ञानमें इतना अधिक सशोधन हुआ है कि हम कह सकते हैं कि उनपर करीव करीव पूरी तरह डाक्टरोका कण्ट्रोल होता जा रहा है। कीटाणु जगत पर विजय पानेके

लिए सूईकी दवाएँ तो पुरानी हैं, इस युद्ध कालमें सबसे पहले 'सल्फानिलामाइड' औषधियोका आविष्कार किया गया। हरएक सैनिकको मैदानमे जानेके पहले 'सल्फानिलामाइड' पाउडरका बक्स दिया जाता है ताकि घाव होनेकी हालतमें वह या उसका पासका दोस्त घाव पर इसे डाल दे कि उसका जहर फैलने न पावे।

पेनिसिलीन

द्वितीय महायुद्धमें प्रकाशमें आयी अद्भुत औषधि पेनिसिलिन है। यह कृमिनाशक औषधि है। इसका रासायनिक नाम 'थियाजोनाइन आक्साजोलोन' है और फार्मूला C १४ H २० O४ N २ S है। यह अभी प्राकृतिक रूपसे फफुन्द से ही मिलता है, पर कृत्रिम रुपसे इसे रासायनिक विधिसे बनानेका प्रयत्न भी हो रहा था और वह सफल हो गया है।

उसके उपयोग जनसाधारणको इस प्रकार हो सकते हैं—

सूई या मुँहसे यह न्यूमोनिया, जहर वात-प्रसूति ज्वर, गर्दन तोड़ बुखार आदि रोगोपर दिया जा सकता है। सल्फा औषधियों से पेनिसिलिन अधिक गुणकारी रहता है। जहरवात, सुजाक, उपदंश, गरमी, खून जहरीला होना आदि में पेनिसिलिन बड़ा फायदा करता है।

पेनिसिलिन तो आश्चर्यजनक औषधि है ही, पर इसका उपयोग विषमज्वर या क्षय रोगपर नहीं होता। एक और अति आश्चर्यजनक औषधि मिली है। इसका नाम स्ट्रेप्टोमिसिन है। यह तपेदिक पर भी काम आ सकती है। अभी यह बहुत थोड़े मात्रा में तैयार हो रही हैं, पर युद्धके कारण ही इस औषधिके संबंधमें भी संशोधन हो सका है। कुष्ठ रोगपर भी इसका उपयोग करनेकी

सोची जा रही है। अपेण्डिसाइटिसपर भी शायद यह कारगर हो। आंख आने के रोगोपर भी पेनिसिलिन उपयोगी साबित हो रहा है।

पेनिसिलिनकी जोड़तोड़की एक और औषधि पायी गयी है। इसका नाम 'वैसिट्रेसिन' है। यह मवाद रोकने, खून जहरीला होने आदि पर कामयाब हुई है।

पेनिसिलीनकी देखा-देखी किटाणु नाशक और भी बहुतसी औषधियां निकली जिनमें कुछके नाम ये हैं—बीवीसिलीन, ग्रामी-सिलीन, क्लेनीसिलिन, स्ट्रिलवेमिडिन, प्रोपेमिडिन, प्रोमीन, एमिनोएकिडीन, पाट्रलीन आदि। सिथिडाइन और एच ११ को भी हमको याद रखना पड़ेगा।

डी० डी० टी०

मक्खियां और मच्छर मारनेवाली औषधि डी० डी० टी० भी इस युद्धका एक आश्चर्य है। यह क्लोरट हाइड्रेट, मोनो क्लोरो बेनजीन और कान्सेण्ट्रेटेड सल्फूरिक एसिड से बनता है।

डी० डी० टी० ने १९४३ में नेपुल्स में साढ़े बारह लाख व्यक्तियो की टाइफस द्वारा विनष्ट होने से रक्षा की है। शायद यह अब दुनियामें मक्खियों और मच्छरो को रहने न देगा। डी० डी० टी० कुहरा बनाकर उसके जरिये पूरे के पूरे टापुओं पर फैलाया जा सकता है। डी० डी० टी० का टिड्डी मारनेके लिए उपयोग हो सकता है या नहीं इसपर प्रयोग हो रहा है।

डी० डी० टी० द्रवको छिड़कनेके लिए भारतमें बंबईके लेफ्टि-नेण्ट कर्नल एन० डी० जी० करानी ने एक यंत्र बनाया है जो साइ-किल में लगाया जाता है। इस यंत्र में ३६ पोंड का एक पम्प होता

है जो किसी साधारण साइकिल की गद्दी के पीछे लगाया जाता है और जिसके चालक यन्त्रसे एक जजीर साइकिलकी फ्री ह्वीलको जोड़ती है। साइकिल चलानेसे यह पप भी चलने लगता है और दवा छिड़की जाती है।

डी० डी० टीके अलावा तीन और अधिक परिणामकारी कृमिनाशक तैयार किये गये हैं। एक बम बनाया गया है। यह एक छोटा-सा टिन का डब्बा है और खोलने पर इसमें से डी० डी० टी या पोइरेथ्रम जैसे कृमिनाशक दवा से युक्त 'एरोसोल' गैस निकलती है और कमरे में भर जाती है। 'फार्मूला ६-१२' नाम की एक मच्छर-नाशक दवा बनायी गयी है जो १०० प्रतिशत साइट्रोनेला से ६ गुना अधिक परिणामकारी होता है। 'एन० एम० आर० आइ २०१' मच्छर-नाशक औषधि ११ घण्टे तक बनी रहती है। जैम्माक्सेन भी महत्त्व की दवा है।

पौधों आदि के रोग कीट मारने के लिए आजतक जितनी दवाइयाँ निकली उनमें यह दोष होता था कि उनका असर अधिक कालतक नहीं रहता था और सब रोग कीटाणुओं पर एक ही दवा काम नहीं करती थी। डी० डी० टीका असर बहुत समय तक रहता है।

यह देखा गया है कि मक्खियाँ बैठने पर गायें कम दूध देती हैं। डी० डी० टी से मक्खियाँ भगायी जाती हैं, इससे गायों का दूध बढ़ता है। चूने में डी० डी० टी डालकर चौपायों या घरो की सफेदी की जा सकती है। इसका असर सालभर तक रहता है। डी० डी० टी मच्छरों का मुँह बन्द कर देता है।

डाक्टरो के लिए दवाइयों के साथ कृमिनाशक एक ऐसा साबुन बनाया गया है कि जो काम मामूली साबुन से २०

मिनट में होता है वह इस साबुन से २ मिनट में हो जाता है। इसका नाम 'जी ११' है और इसमें फेनाल [डाइ हाइड्रोक्सी हेक्सा क्लेरोडीफेनिल मिथेन] रहता है।

अन्य औषधियां

द्वितीय महायुद्ध ने कीड़े-मकोड़े मारने के लिए डी० डी० टी० दिया, घासपूस नष्ट करने के लिए २-४-डी दिया और आदमियों को मारने के लिए परमाणु बम दिया। इसी तरह इसने चूहों को मारने के लिए '१०८०' भी दिया है। चूहे बड़े बदमाश होते हैं, खाद्य-सामग्रीके भण्डारों पर आदमी से अधिक उनका कब्जा रहता है। वे बहुत जल्दी जहर को भी पहचान जाते हैं, पर '१०८०' पहचानना उनके लिए भी मुश्किल है। आलपीन की नोक बराबर '१०८०' पाव भरके चूहे को मार डालता है। यह सोडियम फ्लोरो एसीटेट है। पर इससे कुत्ते जैसे छोटे जानवर और आदमी भी मर सकते हैं, यह इसमें खराबी है।

पेनिसिलिन तो औषधि-विज्ञान का युद्धकालीन आश्चर्यजनक आविष्कार है ही, पर रोग-निरोध के लिए जो कुछ आविष्कार युद्धकाल में और हुए वे इससे भी अधिक महत्त्व के हैं। रक्त से ब्लडप्लाज्मा बनाते समय एक वस्तु गामा ग्लोबुलिन बचती है। इससे बच्चों को निकलने वाली 'माता' एकदम रोक दी जा सकती है या उसका जोर कम किया जा सकता है।

प्रति वर्ष ७ साल के नीचेके हजारों बच्चे कुकुर खाँसी के कारण मरते हैं। सूई से देनेवाली एक ऐसी दवा बनायी गयी है जो बच्चोंको देने या गर्भावस्था में माँ को देनेसे इस रोग का जोर बहुत कम करती है। डिप्थेरिया और

कुकुर खाँसी (व्हूपिंग कफ) के लिए एक संयुक्त वेक्सीन भी निकाला गया है।

इनफ्लुएञ्जा से बचने के लिए भी एक नयी सूई की दवा निकाली गयी है।

मलेरिया के खिलाफ भी डी० डी० टीका उपयोग बहुत हुआ है। इसका उपयोग टाइफस के खिलाफ भी किया गया है।

हवा से आनेवाले कृमिरोग जैसे मम्प, न्युमोनिया, चेचक, माता और सर्दी जैसे गले के रोगों से बचने को कमरे को कृमिविहीन करने के लिए अल्ट्रावायोलेट किरण और ग्लाइफोल के धुएँ का उपयोग भी सफलतापूर्वक किया गया है। स्कूलों के कमरों में इसका प्रयोग करने से बच्चों की बीमारियाँ बहुत कम होगी। यह देखा गया है कि क्षय रोग के कीटाणु हवा में भी फैलते हैं। अल्ट्रावायलेट किरणों से हवा शुद्ध हो सकती है।

युद्धकाल ने मलेरिया के विरुद्ध ही एक अत्यंत परिणामकारी औषधि दी है। संसार में प्रतिवर्ष ३० लाख आदमी मलेरिया से मरते हैं। भारत में तो सबसे अधिक आदमी मलेरिया से ही मरते हैं। युद्धकाल में प्लास्माक्विन और मेपाक्रिन या अटेब्रिन नाम की दो दवाएं घोषित की गयी थी। एक और दवा पालुड्रिन मिली है जो इन दोनों से अधिक लाभकारी है। यह किनाइन से भी ज्यादा फायदेकी है। रंगहीन होने के कारण अन्य दवाइयों का पीलापन भी इससे शरीर में नहीं आता। यह किनाइन से १० गुना और मेपाक्रिन से ३ गुना ज्यादा फायदेकी है। कहा जाता है कि दुनिया की एक तिहाई आबादी यानी करीब ८० करोड आदमियों को मलेरिया सताता है।

जगत का अति भीषण रोग तपेदिक भी शायद अब मनुष्य

के शिकजे में आ जायगा। पेनिसिलिन की तरह्की एक और हरे फफुंद की दवा मिली है जो कांच पर भी और गिनी

पिग्सपर भी क्षय किटाणुओं की वृद्धि को तुरत रोक देती है। मनुष्य पर अभी इसका प्रयोग किया जाने को है। उस फफुन्द से औषधि अलग करने का प्रयत्न हो रहा है।

पिछले महायुद्ध में घायल हुए लोगों में पीठ की रीढ़ टूटने से जितने घायल हुए थे वे करीब करीब सब मर गये। पेनि-सिलिन, सल्फा ड्रग और लोहे की पट्टियो की सहायता से इस युद्ध में डाक्टरो ने इस राक्षस पर बहुत कुछ विजय पायी है।

कैंसर बड़ा भीषण रोग है। रेडियम की सहायता से इसे अच्छा करने का प्रयत्न किया जाता है। परमाणु बम के आवि-ष्कार के कारण साइक्लोट्रोन से कृत्रिम रूप से दवाएँ रेडियो विसर्जक की जा सकेगी। इससे कैंसर के इलाज मे बहुत सुधार होगा।

द्वितीय महासमर में कृत्रिम कुनैन तैयार करने का तरीका ढूँढ निकाला गया। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती ही है।

रक्त बक के सबध में तो अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। इन्होने न मालूम कितने असख्य आदमियो को प्राण दान दिया।

मास मिनियेचर रेडियो फोटोग्राफी ने एक्सरे फोटो में क्रातिकारी परिवर्तन कर दिया है, अब शांतिकाल मे रोगी बारह आने में एक्सरे करा सकेंगे।

युद्धकाल में गरम देशो में सूर्य की जलती गर्मी और लू, ठंढ देश में बर्फ से शरीर का पगु होना, कृमिजन्य रोग, समुद्र-रोग, दूषित पानी आदि हजारो कारणो से जो रोग फैलते हैं उनका सामना करने का प्रयत्न किया गया। समुद्र-रोग [सी-सिकनेस] के लिए जो गोलियां बनायी गयीं उनका उपयोग वायु-रोग पर [एयर-सिकनेस] भी होता है। आग डालने वाले यत्रो के कारण जलने की अक्सीर दवा खोज निकालनी पडी। तैल, एसिड और मौसिम के कारण जो चर्म रोग होते हैं उन पर दवाएँ खोज निकाली गयी। गदगी के कारण डिसेण्ट्री

आदि पेट की जो बिमारियां होती थीं उनको रोकने के लिए क्लोरीन गैस देनेवाली दवाइयां निकाली गयीं। मेथिल ब्रोमाइड से कपड़े कृमि रहित किये जाते रहे। डी. डी. टी. या डाइ-क्लोरो-डाइफेनिल-ट्राइक्लोरा इथेन की बातें लिखी ही जा चुकी है। सर्प के जहर पर भी रामबाण औषधि निकाली गयी है। युद्ध के बाद इन सब का अब उपयोग जनसाधारण के लिए हो सकेगा।

प्रशांतक्षेत्र के रोग कुछ और प्रकार के हैं। मलेरिया इसमें प्रमुख हैं, पर डी. डी. टी. से मच्छर नाश और अटेब्रीन से यह बहुत नियन्त्रण में आ गया है। इसमें किनाइन से ज्यादा अटे-ब्रीनने काम किया है।

युद्धों की समाप्ति पर समाजों में जो एक महारोग फैलता है वह गुप्त रोगों का दौरा है। गुप्त और लैंगिक होने के कारण से ये बिना नियन्त्रण के फैलते जाते हैं। सैनिकों के नीरस जीवन में रस लाने के लिए वे जो कुछ मनोरञ्जन करते हैं उससे यह रोग बढ़ता ही जाता है। द्वितीय महायुद्ध के काल में १९४४ के आरम्भिक दिनों में यह महाव्याधि तेजी से फैलने लगी। इसका एक कारण यह भी था कि सैनिकों ने जब सुना कि पेनिसिलीन नामकी कोई अद्भुत दवा ईजाद की गयी है तो उन्होंने इस रोग से सतर्क रहना छोड़ दिया

दुनिया में यदि गरमी (सिफलिस) से हजारों लोग मरते हैं तो सुजाक (गोनोरिया) से लाखों मरते हैं। गरमी पर आज तक अर्से नेकका इलाज किया जाता रहा, पर इसमें महीनों और सालो लग जाते थे, पेनिसिलीन को मोम और तेलके साथ खून में सूई के जरिये पहुँचाने से अब ये रोग बातकी बात में दूर हो जाते हैं।

जहाजों और विमानों में पहले पहल यात्रा करने पर इन यानों के लगने की जो बीमारी होती है उसकी भी दवा निकाली गयी है। जहाजों की बीमारी (सी-सिकनेस) के लिए हाइड्रोब्रोमाइड की गोलियां देते हैं। विमानों के लिए (हाइओसाइन) या स्कोपोला माइन देते हैं।

पतली हवा में खूब ऊँचे उडनेवालों के लिए आक्सीजन की कमी के कारण जो शरीर शिथिलता आती है उसके लिए उड़ने के पहले रोटी, आलू जैसे कार्बोहाइड्रेट अधिक रहनेवाले पदार्थ खाने चाहिये।

हवाई जहाजों में बैठने और जल्दी जल्दी इधर से उधर घूमने में शरीर का सारा रक्त नीचे की ओर प्रवृत्त होता है और मस्तिष्क पर उसका बडा असर पड़ता है। इसके लिए उड़ाके के पेट के नीचे एक, जांघो में २ और पैर भर २ इस तरह की पाच पट्टियां बांधी जाती हैं। इसे 'फ्लूट सूट्स' कहते हैं।

सेना में जोर जोर से रात में नाक बजानेवाले और नींद में उठकर चलनेवाले भी होते हैं। डाक्टरों के लिए ऐसे सैनिक समस्या बन जाते हैं।

युद्धकाल में ब्रिटेन में कारखानों में सरदी का प्रकोप कम करने के लिए हाइड्रो क्लोरिक एसिड और पोटाशियम क्लोरेट का पानी बोतलों में रखा रहता था। इसकी क्लोरीन को खासी आने तक सूँघने से सरदी कम हो जाती है।

मनुष्य के मुँह से सत्य बात निकलवाने की भी एक दवा निकाली गयी है। यह दवा खाते ही या सूई से देते ही आदमी सो जाता है और सारी सच बातें बक जाता है।

युद्धकाल मे जनसंख्या का प्रश्न बड़ा अहम हो जाता है।

वैज्ञानिकों ने इसका पता लगाते हुए यह जाना कि गरमी से मनुष्य की जननशक्ति कम या बिलकुल नष्ट की जा सकती है। कुछ देशों में जनसंख्या कम हुई है, उसका कारण वे गरम पानी से अधिक नहाना बताते हैं। उनका कहना है कि दुनिया में गरमी का मौसिम कुछ अधिक काळ तक रहा तो मनुष्य जाति ही नष्ट हो सकती है।

कारखाने में काम करनेवाले मजदूरों पर प्रयोग कर देखा गया कि उन्हें विटामिन की गोळियां रोज देने से उनके मस्तिष्क की ताकत बढ़ती है।

अन्नाभाव के कारण पुष्ट पौरुष का जो अभाव उत्पन्न होता है उस पर पुरुषों के लिए टेस्टोस्टेरोन नामक एक सूई से देने वाली दवा बनायो गयी है।

युद्धकाल में कृमिजन्य रोग करीब करीब पूरी तरह नियंत्रण में आ चुके हैं, पर वार्धक्य रोगों से होनेवाली मृत्युसंख्या बढ़ी है। हृदयरोग, रक्तप्रवाह, कैंसर, डायाबिटीज आदि रोग इस मेल के हैं। इनसे लड़ने का भी अब डाक्टर-वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है।

हृदयरोग के इलाज में भी आश्चर्यजनक नयी प्रगति हुई है। रूसी डाक्टरों ने मेंढक, खरगोश, कुत्ते, बिल्ली आदि छोटे जानवरों का हृदय निकाल कर दूसरे शरीर में सफलतापूर्वक लगा दिया है। भविष्य में मनुष्य के बारे में भी यह संभव हो सकता है।

बीमार लोगों को भी सोये सोये बिना तकलीफ के केवल एक बटन दबाकर किताब पढ़ने या सिनेमा देखने की सुविधा इस यंत्रयुग ने कर दी है। किताबों और पत्रपत्रिकाओं के पन्नों की

फिल्म बनायी जाती है और यह छत पर लगे परदे पर दिखाई पड़ती है। उसका बटन रोगी के बिस्तर से लगा हुआ होता है।

जहां इच्छा हुई पैर, टेहुनी या हनूठी से बटन दबाया और एक के बाद, एक पृष्ठ की फिल्म देखना शुरू, किया

युद्ध के बाद भूख और रोग से फिर दुनिया तबाह न हो इस लिए डाक्टर लोग यूरोप में पहले से ही तैयार थे। कहते हैं कि डाक्टरों ने इतनी बड़ी और अंतर्राष्ट्रीय रूप से व्यापक तैयारी आज तक के इतिहास में कभी नहीं की थी। बीसों राष्ट्रों के हजारों स्वास्थ्य विशेषज्ञ वहाँ पहले से तैयार थे। और इसी से आशा की जाती है कि प्रथम महायुद्ध के बाद रोगों का जो तांडव संसार भर में हुआ वह इस बार नहीं होगा।

शल्य चिकित्सा

शल्य चिकित्सा या सर्जरी मे भी द्वितीय महासमर काल मे क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। अंधो की आँखो के गढ़ो में अच्छी आंखें वैठाने के आपरेशन सफल हो चुके हैं। उखड़े हुए अच्छे दाँत दवा और तार से बांध कर फिर अपनी पुरानी जगह पर जमाने के प्रयोग भी डाक्टर सफल कर दिखा चुके है। दांत की वीमारिया कम करने के लिए सोडियम फ्लोराइड का उपयोग किया गया है। अमेरिका में तो एक शहर के जलकल की टकियों मे ही यही दवा डाल कर देखा जा रहा है कि फ्लोरीन से दाँत की वीमारियां कम होती है या नहीं।

टैंटेलम नामकी एक नयी धातु का पता लगाने से सर्जरी में छिपे एक दुश्मन का नाश हो गया है। यह धातु सब दृष्टियो से निर्दोष साबित हुई है और घावों के विषाक्त होने का डर बहुत कम हो गया है।

चीरा लगाने के पहले शरीर के भाग को वरफ से ऐसा ठंढा करने का तरीका डाक्टरों ने ढूंढ निकाला है कि न क्लोरोफार्म जैसी बेहोशी की दवा की जरूरत है, न घाव में से खून बहता है और न किसी प्रकार की पीड़ा होती है। घाव सीने के ऐसे यंत्र वने हैं कि बटन दबाने से आप से आप डोरा आ जाता है। ऐसे भी यंत्र वने हैं कि मांस पेशी का १।१००० इंच टुकड़ा काट सके और उस टुकड़े की एलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप में जांच की जा सके।

प्लास्टिक सर्जरीने तो कमाल कर दिया है। शरीर में नकली अवयय वैठाने की क्रिया में फाइब्रिनजेन और थ्रोम्बिन से बड़ी सहायता मिलती हैं। मनुष्य के खूनका प्लाजमा बनाते समय ये

चीजें बचती हैं। कटे भाग पर इनका सोलूशन लगाने से नकली अवयव बड़ी खूबी से जुट जाते हैं।

युद्धकाल में औषधि विज्ञान की इतनी अधिक उन्नति हुई है

कि दोनों हाथ और दोनो पैर कटा हुआ एक अमेरिकन सार्जेण्ट भी जिंदा है। शरीरका ८३ फी सदी भाग जल जानेपर भी रक्त दान आदि से एक अमेरिकन सैनिक जीवित रखा जा सका। तीन महीने के बाद वह फिर मैदान पर गया !

युद्धकाल में जर्मन विज्ञान ने केवल युद्धास्त्र ही बनाये और अन्य जनोपयोगी बातों पर ध्यान नहीं दिया यह कहना गलत होगा। चिकित्सा विज्ञान में ही उन्होंने बहुत उन्नति की है। हाथ कटे हुए लोगो के लिए उन्होंने ऐसे बनावटी हाथ बनाये थे कि ज्ञान तंतुओं में से बिजली की सहायता से शक्ति दौड़ाकर नकली हाथों की उँगलियों से चीजें उठायी जा सकती हैं।

जर्मनों ने एक ऐसी दवा बनायी जो पेनिसिलिन से ३०० गुना अधिक गुणकारी है। ब्रिटिश इसे अब 'एटामिक पेनिसिलिन' नाम दे रहे हैं। यह सैलिसिलिक एसिड [जिससे एस्पिरिन बनता है) और ब्रोमीन से बनती है और जहरीली लाल पानी की तरह होती है। इस में ब्रोमीन होने के कारण यह साइक्लोट्रोन से किरण विसर्जक भी बनायी जा सकती है और इसीलिए इसका नाम परमाणु पेनिसिलिन रखा गया है।

डाक्टरी विज्ञान में चमत्कार करने वाले दो नये टेलिस्कोप महासमर काल में बनाये गये हैं। एक का नाम है पेरिटोनियो स्कोप। यह आंत (अब्डोमेन) के रोग देखने के लिए है। दूसरा गैस्टोस्कोप है जो पेट के कैंसर की बीमारी में देखने में अति लाभप्रदसिद्ध हुआ है। पहला दो पेन्सिलों की लंबाईका है। इस में बिजलीका छोटासा बल्ब रहता है और अब्डोमेन के अंदर जाकर देख सकता है। हवा से अब्डोमेन फुलाया जाता

है और शरीर के अंदर इसे घुसाकर (इस भागपर एनेस्थेटिक इस्तेमाल कर) आधे घटे के अदर सारे अब्डोमेन की जांच हो जाती है। टेलिस्कोप से ही फिर हवा निकाल दी जाती है और चीरा सी दिया जाता है। इसी मे शोथ और छोटासा चाकू भी रहता है। कैंसर, लिवर, गालब्लैडर, हार्निया, पेरीटोनिस्टिस, अपेण्डिसाइटिस और स्टरिलिटी के निदान में बड़ी सहायता मिलती है और चीरफाड का काम बहुत कम हो जाता है।

गैस्टोस्कोप मुँह के रास्ते पेट में भेजा जाता है। पेटका जो कैंसर क्ष किरण से भी नहीं पकड़ा जाता उसका पता इससे लग जाता है। क्रानिक गैस्ट्रिटिस में यही एक काम आता है। छिपे अल्सर भी दिखाई देते हैं।

चीरफाड के फोटोफिल्म लेने के लिए अमेरिका में एक द्रुत गामी केमरा बनाया है। इस में एक कार्टज वेपर ट्यूब होता है जो सूर्य प्रकाश से भी अधिक तेज प्रकाश १।२५००० सेकेण्ड के लिए देता है। फोकस करने के बाद सारा काम बटन दबाने से होता है।

मानसिक आहत

युद्ध के आहतों का एक महाभयकर रूप होता है जिसकी ओर दुनिया का ध्यान बहुत कम जाता है। यह रूप मानसिक रूप से घायल सैनिकों का है। ये पागलों के अस्पतालों में ठूँस दिये जाते हैं इसलिए इनकी ओर जगत का ध्यान बहुत कम जाता है। केवल अमेरिका में प्रथम महायुद्ध में ३० हजार सैनिक पागलखाने में भेजे गये थे। इस युद्ध में पागल हुए सैनिकों की संख्या का पता अभी नहीं लगा है। अमेरिका में पागल सैनिको के लिए केवल ३० अस्पताल हैं। ऐसे रोगियो को

एलेक्ट्रो-शाक थेरापी की चिकित्सा की जाती है। एक और चीरे की नयी चिकित्सा १९३७ के बाद से की जाती है। इसमें मस्तिष्क के दोनों ओर के कुछ तंतु काटे जाते हैं। इस चिकित्सा को प्रीफ्रंटल लोबोटोपी कहते हैं। इन अस्पतालों की व्यवस्था में बहुत सुधार होने की आवश्यकता है।

अकाल-नाश का प्रयत्न

यह देखा गया है कि हर बड़े युद्ध के बाद दुनिया भर में रोग फैलते है। इसका कारण अपने देशों से लोगो का भागना, अधिक लोगो का गृह हीन होना, खाद्य और साबुन की कमी, सैनिकों का यौन संबध मे गैर जिम्मेदार होना आदि रहता है। पिछले युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप में टाइफस, कालरा, रिलैप्सिग फीवर, चेचक, डिसेंट्री, टाइफाइड आदि रोगो ने हाहाकार मचा दिया था। इ फ्लुएंजा तो १९१८-१९ में दुनिया भर में फैला। यहाँ तक कहा गया कि प्रथम महायुद्ध केवल ४ वर्ष नहीं, पर १० वर्ष चला।

द्वितीय महायुद्ध के बाद क्या होता है यह अभी देखना है। हर एक स्वस्थ व्यक्ति को रोज औसत २५०० कैलोरी गरमी की आवश्यकता होती है। इस बार युद्धकाल में फ्रांस में अन्न की कमी होते हुए भी मृत्यु सख्या बहुत अधिक नहीं हुई थी। फिर भी यूरोप के १० देशों मे गर्दन तोड बुखार, टाइफाइड, डिसेंट्री, डिप्थेरिया और लाल बुखार फैला है। औषधि विज्ञान की उन्नति से भी रोगों पर और विशेष कर सक्रामक रोगों पर बहुत कुछ विजय प्राप्त की जा चुकी है।

महायुद्धों का एक अवश्यंभावी परिणाम अकाल होता है।

यूरोप में इसी जाड़े में उसका विनाश देखने को मिलेगा। इससे लड़ने का भी वैज्ञानिकों ने निश्चय किया। मनुष्य को शरीर-यंत्र चलाने के लिए कुछ निश्चित कैलोरी गरमी, प्रोटीन, खनिज पदार्थ और विटामिन की आवश्यकता होती है। सोया-बीन से एक ऐसा अन्न बनाया गया है जो ये सब चीजें देता है। इसका नाम एम० पी० एम० (मल्टी पर्पज मील) रखा गया है।

दूध, मांस अंडे, मटर और मछली तथा एमीनो एसिड पाव-डर का एक और ऐसा खाद्य पदार्थ बनाया गया है जो बहुत अधिक कमजोरों को पतला बनाकर मुँह से या सूई से दिया जा सकता है। इसका नाम प्रोटीन हाइड्रोलिसेट रखा गया है।

मृत्यु पर विजय

द्वितीय महायुद्ध में औषधि विज्ञान में जो सब से अधिक आश्चर्य जनक प्रयोग हुआ वह मृत्यु पर विजय पानेका प्रयत्न था। यह कार्य रूस में हो रहा है। रूसी वैज्ञानिक नेगोस्की का कहना है कि मनुष्यकी मृत्यु की तीन अवस्थाएँ होती हैं। पहली मृत्यु तो श्वास बंद होने से होती है। जीवन का मृत्यु के साथ संघर्ष यहाँ समाप्त हो जाता है। श्वास बंद होने के बाद भी कुछ हृदय और फेफड़े इतने धीरे धीरे चल सकते हैं कि उनसे खून की गर्दिश न हो। जब यह भी बंद हो जाता है तो दूसरी मृत्यु होती है। इन दोनो मृत्युओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न हो रहा है। इन दोनो मृत्युओं के बाद ज्ञानतंतु और मस्तिष्क बेकार हो जाता है और तब वास्तविक जीव-मृत्यु होती है क्योंकि इस मृत्यु पर विजय पाना वैज्ञानिकोंकी रायसे असंभव है।

मृत्यु की द्वितीय अवस्था के प्रारंभिक काल में भी नेगोस्की ने जीवनदान दिया है। १६४२ तक २८४ प्रयोग किये गये जिनमें १५१ पूर्ण रूपसे और ७२ अस्थायी रूप से सफल हुए। ६१ प्रयोगों में विफलता रही। रूस में १८८७ से ही जानवरों पर, कुत्तों आदिपर, इसके प्रयोग हो रहे हैं। अब ये मनुष्य पर भी सफल हुए हैं।

चेरेयानोव नामका एक रूसी सैनिक घायल हुआ और मर गया। मृत्यु के ३॥ मिनट बाद नेगोस्की का दल आया और उसने खून और आक्सीजन देकर उसे जीवित कर दिया। खून देने पर रक्त का दबाव बढ़ा और १ मिनट में हृदय की धड़कन शुरू हुई। ३ मिनट के बाद सांस शुरू हुई और १ घंटे बाद होश आया। चेरेयानोव अब भी जीवित है। नेगोस्की ने मृत्यु के १५-१५ मिनट बाद तक कुत्तों को जिंदा किया है। द्वितीय महायुद्ध में लाल सेना के ५१ ऐसे मृतों में से १२ सैनिक जिंदे किये जा चुके हैं। ३१ जीवित होकर बाद में फिर अन्य कमियों के कारण मर गये।

---

(१०)

विज्ञान-ज्ञान समन्वय

द्वितीय महा समर में हुए वैज्ञानिक अनुसंधानों ने भौतिक क्षेत्र में क्रांति कर दी है। यह हमने देखा, पर इसने ज्ञानके क्षेत्रमें भी बमविस्फोट किया है इसे अभी बहुत कम लोग जानते हैं। परमाणु बमने यह काम किया है। ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी खाई थी उसे इसने पाट दिया है। इसे ठीक ठीक समझने के लिए इस संबध में कुछ प्राचीन ज्ञान-विकास की चर्चा करना अस्थानीय न होगा। लेखक की 'परमाणुबम' पुस्तक भी देखिये) परमाणु बमका रहस्य प्रकट करने के लिए दुनिया के वैज्ञानिक इसी लिए जोर दे रहे हैं। क्योंकि,यदि किसी एक देश के राजनीतिज्ञों ने इसे गुप्त रखा तो ज्ञानकी सारी प्रगति ही रुक जा सकती है। यदि दुर्भाग्य से तीसरा महायुद्ध हुआ तो वैज्ञानिकों को इसी शर्त पर काम करना चाहिये कि कोई भी बात गुप्त न रखी जायगी।

हम जिस सृष्टि में रहते हैं उसकी उत्पत्ति का इतिहास जानने के लिए प्राचीन काल से ही मनीषि प्रयत्न करते आ रहे हैं। कणाद के न्याय शास्त्र में कहा गया है कि जगत का मूल कारण परमाणु है। परमाणु पदार्थ का न्यूनतम कण है। परमाणु एकत्र आते हैं तो नये नये संयोग से नये गुण उत्पन्न होकर विभिन्न

पदार्थ बनते हैं। मन और शरीर के भी परमाणु हैं और वे जब एकत्र होते हैं तो चैतन्य बनता है।

डाल्टन का परमाणु वाद भी कुछ इसी से मिलता जुलता है। पर डाल्टन का परमाणु वाद जिस प्रकार लामार्क और डार्विन के उत्क्रांति वाद से पीछे पड़ गया, उसी तरह प्राचीन काल में भी कणाद के मत को कपिल के सांख्यवाद ने पीछे ढकेल दिया था। मूल परमाणु को गति कैसे प्राप्त हुई इसे कोई कणाद नहीं बता सका। अचेतन से सचेतन और सचेतन की उत्क्रान्ति कैसी हुई इसे कणाद का कोई शिष्य नहीं बता सका। कपिल के सांख्य शास्त्र ने हमें बताया कि एक ही मूल पदार्थ के गुणों का विकास होकर सृष्टि की रचना हुई। कपिल के सांख्य मत में कहा गया है कि मूलतत्व केवल २५ ही हैं। जगत में नयी कोई वस्तु नहीं उत्पन्न हो सकती। जगत के सब पदार्थों के मूलभूत द्रव्य को सांख्य शास्त्र 'प्रकृति' कहता है। 'प्रकृति' सत्व, रज और तम, इन तीन गुणों से बनी रहती है। आरंभ में इन तीनों गुणों का ज़ोर एक-सा रहा, इससे प्रकृति में साम्यावस्था रही। प्रवृत्यात्मक रजोगुण के कारण मूल प्रकृति से विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति और सृष्टि का आरम्भ हुआ। तम से अज्ञान, रज से प्रवृत्ति और सत से चैतन्य उत्पन्न होता है। मूल प्रकृति एक होने पर भी गुणों के कम या अधिक होने से नानात्व उत्पन्न होता है। त्रिगुणात्मक प्रकृति के इसी अध्ययन को विज्ञान कहते हैं। प्रकृति मूलतः अव्यक्त या अक्षर रहती है, त्रिगुणात्मक दोषयुक्त होने पर वह व्यक्त या क्षर होती है। सांख्य यह भी मानते हैं कि अचेतन, खटाटोपी और त्रिगुणात्मक प्रकृति के अतिरिक्त सचेतन, उदासीन-अकर्ता और निर्गुण पुरुष

भी होता है और दोनों अनादि-सिद्ध, स्वतन्त्र और स्वयम्भू हैं। प्रलयकाल में प्रकृति का विकार अर्थात् व्यक्त नाश पाता है और फिर पुरुष और अव्यक्त प्रकृति रह जाती है।

जर्मन दार्शनिक अर्न्स्ट हेकेल का कहना है कि जड़ के ही उत्कर्ष से आत्मा या चैतन्य उत्पन्न होता है, पर काण्ट कहना है कि पुरुष और प्रकृति ये दो स्वतन्त्र तत्त्व हैं।

पश्चिमी देशों में दो सौ वर्ष पहले तक पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि ये सृष्टि के चार मूल पदार्थ माने जाते रहे हैं। जब यह साबित किया गया कि पानी, हवा और मिट्टी अलग-अलग पदार्थों से बनी हुई है तब इस चार मूल तत्त्वों के सिद्धान्तका त्याग किया गया।

पिछले दो सौ वर्षों में विज्ञान के अध्ययन की तेजी के साथ उन्नति होती गयी। प्रकृति-लीला जानने के प्रयत्न में वैज्ञानिकों ने देखा कि सारी सृष्टि में जड़ पदार्थ और कर्मशक्ति तथा चैतन्य का ही खेल दिखाई देता है। जड़ पदार्थ भी सारे ९२ मूल द्रव्यों से ही बने हैं। वैज्ञानिको ने इनके परमाणुओं का इनके संयोगो आदि से सापेक्ष रूप से परमाणु वजन निश्चित किया। फिर विभिन्न परमाणुओं के सामान्य गुणो और उनके परमाणु-वजनों में सम्बन्ध बैठाने की कोशिश की गयी। मेयेर-मेण्डलीफ जैसे वैज्ञानिकोने तो इन सिद्धान्तो के आधार पर यहाँ तक कह डाला कि फलां अज्ञात द्रव्यों का गुण इस-इस प्रकार होगा। बाद में इनमें से कुछ द्रव्यों का पता लगा और उनके गुणो की भविष्यवाणियाँ भी बहुत कुछ ठीक निकलीं।

डाल्टन ने कहा था कि परमाणु का विभाजन नहीं किया जा सकता। पर बाद में वैज्ञानिको को यह सन्देह होने लगा

कि परमाणु को भी हम तोड़ सकते हैं, पर परमाणु जिन भागों से बना है उसे कोई बड़ी भारी शक्ति एकत्र रखती है। यदि उस शक्ति को तोड़ने की किसी में सामर्थ्य हो तो परमाणु भी टूट सकता है।

पदार्थ विज्ञान शास्त्रियो ने प्रकाश पर प्रयोग किये और कहा कि ईथर में कुछ विशेष लम्बाई की लहरे निकलने से प्रकाश किरण उत्पन्न होता है और मनुष्य की आँख लाल प्रकाश से (लहर की लम्बाई १। ८१० लाख से. मीटर) लेकर बेंगनी (१। ३६० लाख से. मी.) रङ्ग के प्रकाश तक की ही लहरे देख सकती हैं। यह भी देखा गया कि विभिन्न मूल द्रव्य विभिन्न रङ्ग का प्रकाश देते हैं। इससे वैज्ञानिको की यह शङ्का दृढ़ हो गयी कि परमाणु भी विभाज्य है और मूल द्रव्यों के गुण भेदोंका कारण परमाणु के अन्दर की रचना का ही भेद होता है चुम्बको के कारण जब रंगो में फर्क होने लगा तब तो वैज्ञानिको ने यह निश्चित रूपसे मान लिया कि परमाणु भी किन्हीं और भागो से बना रहता है और उन भागोपर चुम्बक का असर होता है।

वैज्ञानिक कहने लगे कि विश्व आरम्भ में वायु रूप या शून्य रूप था। यह रूप बहुत अधिक उष्ण था। यह ठंढा होने लगा और उसी प्रक्रियामें परमाणु बने। इसीलिए हाइड्रोजन हेलियम जैसे मूल द्रव्य उनकी परमाणु-रचना सरल होनेके कारण बहुत जल्दी बन गये। अन्तमें रेडियम युरेनियम बने और इसी कारण वे बहुत कम पाये जाते हैं। रेडियम-युरेनियम अब भी स्थायी नहीं है और स्थायी द्रव्यों में बदल रहे हैं। ज्यों-ज्यों तापमान और कम होता गया विभिन्न मूल द्रव्यो के परमाणु मिलते गये और नये-नये पदार्थ बनने लगे।

इसी सिद्धान्त को आधार मान कर वैज्ञानिकों ने उलटे प्रयोग करना शुरू किया। विभिन्न पदार्थों का तापमान बढ़ा कर उन्होंने उन्हें उनके मूल द्रव्यो में अलग किया। यह भी दिखा दिया कि वे जब अन्य उपायों से अलग किये जाते थे तो तापमान अपने आप बढ़ जाता था।

यही प्रयोग अब परमाणु पर भी शुरू हुए। यदि शून्य में वायु का अभूत-पूर्व ताप घट कर परमाणु बना तो परमाणु टूटने पर वह सारा ताप हमें मिलना चाहिये।

परमाणु बम में यही ताप हमें मिला है।

वायु नलिकाओं में विद्युद्वहन के प्रयोग जब होने लगे तब यह मालूम हो गया कि पृथ्वी परके सब [९२] मूल द्रव्यों के परमाणु धन-विद्युत और ऋण विद्युत के सयोग से बने हैं। ऋण-विद्युत युक्त कण को इलेक्ट्रान कहते हैं और उनकी जो तेज धारा होती है उसको कैथोड किरण। इन्हीं धन और ऋण विद्युत कणों के कम अधिक होनेसे अलग-अलग गुण वाले मूल द्रव्य बनते हैं। यहाँ पाठकों को प्रकृति और रज-तम-सत्व की याद आवेगी।

कैथोड किरण या एलेक्ट्रानो की तेज धारा जिस पर पड़ती है वह भाग अंधेरे में चमकने लगता है और उसमे से फिर रांटजेन या क्ष किरण निकलने लगते हैं। इसका उलटा प्रयोग कर देखा गया कि यूरेनियम जैसे अँधेरे में चमकने वाले पदार्थों से तेज किरण निकलते हैं। इस किरण विसर्जन क्रिया को अंग्रेजी में रेडियो ऐक्टिविटी कहते हैं। यह देखा गया कि ये किरण परमाणु के अंदर कुछ गड़बड़ होने से निकलते हैं।

जब यूरेनियम से भी अधिक तेज किरण-विसर्जक द्रव्य रेडियम का पता लगा तो मालूम हुआ कि १ ग्राम रेडियम के परमाणु भंग से २ अरब कैलोरी गरमी मिलती है (१ ग्राम पानी १ डिग्री सेण्टीग्रेड गरम करने के लिए १ कैलोरी गरमी लगती है—४५३ ग्राम का एक पौंड या करीब आधा सेर होता है।) उतना ही कोयला जलाने से जितनी गरमी मिलती है उससे यह १० लाख गुना अधिक है।

सूर्य मंडल के आधार पर वैज्ञानिकों ने मान लिया है कि परमाणु की रचना भी वैसे ही रहती है। बीच में धनविद्युत युक्त प्रोटान रहता है और इसके चारो ओर ग्रहों की तरह ऋण विद्युत युक्त एलेक्ट्रान रहते हैं। तेज वोल्टेज वाली बिजली से ये एलेक्ट्रान अलग किये जा सकते हैं। बाद में देखा गया कि प्रोटान दो कणों से बना रहता है। एक तो धनविद्युत युक्त पाजिट्रान रहता है और दूसरा तटस्थ। इस तटस्थ कण को न्यूट्रन कहते है। ये तटस्थ होने के कारण प्रोटानो में आसानी से घुस जाते हैं और परमाणु बम में इसी का उपयोग प्रोटान तोड़ने में किया जाता है।

परमाणु बम की सफलता से वैज्ञानिकों के हाथ में एक भारी क्रांतिकारी सिद्धान्त लगा। वह यह है-पदार्थों या मूल द्रव्यों का कार्यशक्ति में परिवर्तन किया जा सकता है।

वैज्ञानिक आज तक यह जानते थे कि—

पदार्थ (मैटर)

मूल्य द्रव्य—अणुओं से बनता है।
अणु—परमाणुओं से बनता है।

कार्यशक्ति (एनर्जी)

परमाणु—एलेक्ट्रानों और प्रोटान से बनता है।

एलेक्ट्रान-प्रोटान—ईथर या शून्य वायु से बनते हैं।

पर वे समझते थे कि मूल द्रव्यात्मक परमाणु से शक्तिरूप ईथर निर्माण करना या शक्तिरूप ईथर से मूल द्रव्यात्मक परमाणु का निर्माण करना मनुष्य के वश की बात नहीं है। परमाणु बम ने इस सिद्धान्त का उतने ही जोर से विस्फोट किया है जितने जोर से वह हिरोशिमा पर फटा था। परमाणु बम में पदार्थ का कार्य शक्ति में रूपांतर किया गया है, पर अमेरिका में 'बेटाट्रोन' नामक एक मशीन बनायी गयी है जो कार्य शक्ति को पदार्थ में बदल देती है। इसमें एलेक्ट्रानों की गति तेजकर प्रकाश की गति तक १८६००० मील प्रति सेकेण्ड की जाती है जिससे एलेक्ट्रानों का वजन २५० गुना बढ़ जाता है। इन इलेक्ट्रानों की शक्ति का रूपांतर अत्यंत शक्तिशाली क्ष किरणों में किया जाता है जो बाद में घन और ऋण विद्युत कण बन जाते है जिससे सारे पदार्थ बने हैं। इन क्ष किरणों की मोटाई २ इञ्च हो जाती है। ये युरेनियम परमाणु को तोड़ सकते हैं, पर अधिक दूर नहीं जाते। इससे परमाणु बम का इससे काट नहीं बन सकता। इनसे उच्च धातु बनाये जा सकते हैं और कैंसर पर भी इनका उपयोग हो सकता है। १२ इञ्च मोटे इस्पात की दीवार के अंदर का फोटो यह ले सकते हैं। ये क्ष किरण १० करोड़-वोल्ट शक्ति के होते हैं। बेटाट्रोन का वजन १३० टन है।

वैज्ञानिकों ने पदार्थ का शक्ति में रूपान्तर कर दिया। अब वैज्ञानिक शक्ति का पदार्थों में रूपान्तर करने का रहस्य ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके बाद वे अचेतनसे सचेतन होने का

कि यह बारूद से नहीं, पर सचेतन परमाणु के टूटने से होता है।

जैसे जड़ परमाणु में प्रोटानों, न्यूट्रनों और एलेक्ट्रानों के विभिन्न संस्कारों से विभिन्न मूल द्रव्य बनते हैं उसी तरह सचेतन परमाणु के प्रोटानों, एलेक्ट्रानों के सख्या भेद से विभिन्न प्रकार के जीव बनते होंगे। अभी इस सारे विशाल क्षेत्र में शोध का काम वैज्ञानिकों के लिए खुल गया है। जड़ और चेतन की तुलना करने का मनोविनोद किया जाय तो हम कह सकते हैं जड़में जो यूरेनियम है वह हमारे मनुष्य जीव का मस्तिक है। जड़ में जो आइरन या लोह है वह हमारे या अन्य जीवों और वनस्पतियों की मांसपेशियां हैं।

दुनिया अब जान गयी है कि बहुत से रोग कीटाणु (बैक्टेरिया) के कारण होते हैं। चिकित्सा-विज्ञान के ज्ञाता अब कहते हैं कि इन्फैण्टाइल पैरेलिसिस, चेचक, पीला बुखार, मुख-रोग, कुत्तों के रोग आदि बहुत से रोग 'वाइरस' से होते हैं। पौधों में भी इन्हीं से रोग लगता है। इन्हें हम कीटपरमाणु कह सकते हैं, क्योंकि ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि टेलेस्कोप से भी केवल इनके वृद्ध पितामह ही दिखाई देते हैं। एलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप से वैज्ञानिकोंने कुछ और को देखा। १० साल पहले वैज्ञानिकों ने इन्हें रासायनिक विधि से अलग किया तो देखा कि इनके (क्रिस्टल) रवे नमक और शकरके रवे की तरह ही जड़ होते हैं, पर जब ये आप हम जैसे 'जीवित' वस्तु के साथ हो लेते हैं तो खुद ही सचेतन होते हैं। इनमें जड़ और चैतन्य का भेद कहां किया जाय इसे बताना असंभव है। इन्हीं वाइरस कीटपरमाणुओं ने प्रथम महायुद्ध के बाद दुनिया भर में इन्फ्लुएञ्जा की ऐसी महामारी फैलायी कि उससे इतने अधिक

आदमी मरे जितने महायुद्ध में भी नहीं मरे थे। ये कीट-परमाणु अपने से ही और कीटपरमाणु नहीं पैदा करते, पर जब ये मनुष्य या पौधो के गोलको से मिलते हैं तो गोलक ही (न्यूक्लियर सेल्स) और कीटपरमाणु उत्पन्न करते हैं जो पास के गोलकपर असर करते हैं और इस तरह यह क्रिया फैलती जाती है। (यह देखा गया है कि वाइरस कीटपरमाणु स्वस्थ और वृद्धिशील गोलको के पास ही जाना पसन्द करते हैं।)

वैज्ञानिको का कहना है कि सभवत यह वाइरस कीटपरमाणु और कुछ नहीं, कोई बहका हुआ दुष्ट 'जेने' होता है। यहीं पर रसायन शास्त्र और आनुवंशिक विज्ञान का सम्बन्ध प्रारम्भ होता है।

'जेने' के समूह को आनुवंशिक वैज्ञानिक क्रोमोसोन कहते हैं। और इन्हींकी माइक्रोस्कोपमें परीक्षा कर वैज्ञानिक आनुवंशिक गुणोंका वर्णन करते हैं। शरीर करोड़ों गोलको से बनता है और हर एक गोलक के न्यूक्लियस में ४८ क्रोमोसोन रहते हैं। इनमें २४ पिता के और २४ माता के रहते हैं। क्रोमोसोन जेनोंका पुञ्ज रहता है और यदि जेने वाइरस की तरह रहता है तो हम जब वाइरस को कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फोरस के प्रतिशत का नाम दे सकते हैं तो जेने को भी हम इसी तरह का रासायनिक नाम दे सकते हैं।

इन जेनों का फिर वर्गीकरण कर रसायन शास्त्री अपनी शाला में मनुष्यो के आनुवंशिक समझे जानेवाले गुणों का निर्माण और निश्चय कर सकते हैं।

यह मालूम है कि गर्भाशय में गर्भ धारण के समय 'आर्गनाइज़र' शक्ति नाम के रासायनिक पदार्थ गोलकों को लेकर

घूमते हैं और गर्भ में योग्य स्थान पर योग्य गोलक रखते हैं। मस्तिष्क, हड्डियां, लीवर या चमड़े की जगह उनके-उनके गोलक रखे जाते हैं। इन गोलकों के जाने के पहले आनुवंशिक गुणों का निश्चय करनेवाले 'जेने' उनसे मिल जाते हैं। (आँखों का रंग, नाककी बनावट, केशो की कमी या गञ्जापन, गायन प्रियता आदि का निश्चय आनुवंशिक गुण करते हैं।)

वैज्ञानिक इसी प्रकार जड और चैतन्य गुणो के बीच की खाई बिल्कुल पाट देना चाहते हैं। 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'। वे चैतन्य, जड़ और कार्यशक्ति इन सबको परमाणु, विद्युत् और अन्ततः शून्य से निर्मित स्थापित करना चाहते हैं। चैतन्य का रहस्य जानने पर अमरत्वका रहस्य जानना कोई कठिन बात नहीं रह जायगी।

यह तो हुई वैज्ञानिको की सूक्ष्म की ओर जाने की बात। इस अथाह विश्व के रहस्य जानने का वैज्ञानिको का प्रयत्न भी जारी है। कुछ वैज्ञानिक काम युद्ध के कारण रुक जाते हैं, उन्हीं में से यह भी एक था। कैलिफोर्निया में दुनिया की सब से बड़ी वेध शाला है। उसके लिए युद्ध शुरू होने के पहले २०० इंची बड़ा टेलिस्कोप वहीं तैयार हो गया था, पर उसे बैठाने का काम रोक दिया गया था, वह अब हो रहा है। आज तकका सब से बड़ा टेलिस्कोप १०० इची था और वह भी वहीं था। पुराने टेलिस्कोप से आज जो विश्व दिखाई देता है उसका ३० गुना और अज्ञात विश्व नये टेलिस्कोप से दिखाई देगा। आज जितना दूर आदमी देख सकता हैं, नये यंत्र से उससे दूना दूर देख सकता है, नये यंत्र से १ अरब प्रकाश वर्षका विश्व दिखाई देगा। (१ प्रकाश वर्ष = ३६४ × २४ × ६० × ६० × १८६०० मील) ये

आंकडे कल्पनातीत है । ज्योतिषियों ने २६ इंच व्यासका और १३० सेर वजन का दूरबीन का एक और शीशा तैयार किया है ।

आइन्स्टाइन का सिद्धांत' 'विश्व गोल है' और एडिंगटन का सिद्धान्त 'विश्व प्रसरणशील है आदि प्रश्नो का निश्चित उत्तर पाने के लिए वैज्ञानिको का यह प्रयत्न चल रहा है । एक ओर वैज्ञानिक परमाणु के अदर घुस रहे हैं और दूसरी ओर वे शून्य और विश्व में सैर कर रहे है ।

---
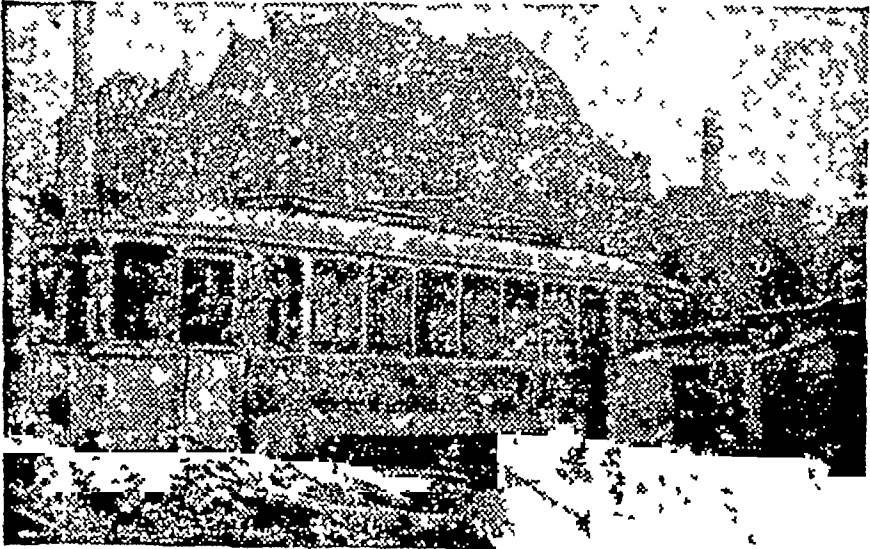
(११)

विविध

वैज्ञानिकों का कहना है मनुष्य ऊँचा होता जा रहा है। प्रत्येक पीढी पिछली पीढी से औसतन ३·५५ सेण्टीमीटर या
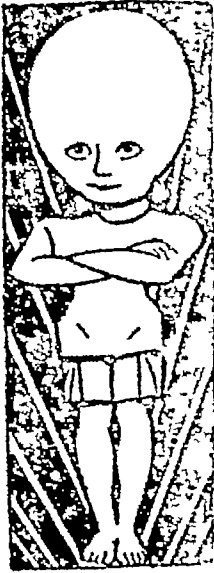
१·३७ इञ्च ऊँची होती जा रही है। छोटे भाई बड़े भाई से ऊँचे होते है। विज्ञान की उन्नति का ही यह परिणाम है। शरीर शास्त्रियों ने भविष्यवाणी की है कि ५ लाख वर्ष के बाद मनुष्य का सिर गोल और केशविहीन (स्त्री का भी!) हो जायगा। उसकी बुद्धि बढेगी, पर श्रवण, चखने की, दृष्टि और घ्राण शक्ति कम होगी। चेहरे उनके छोटे होगे शरीर आज से छोटा, पैर, लबे और चार ऊँगलीवाले होगे, वानर का मस्तिष्क ८१४ घन सेण्टीमीटर, आज के मनुष्य का १३५० घन सेण्टीमीटर है और भावी मनुष्य का १७२५ घं० से होगा। ×××

जर्मनों ने अपनी महत्ता स्थापित करने के लिए यह सिद्धांत प्रचलित किया था कि लंबे सिर वाले लोग अधिक बुद्धिमान होते हैं और नार्डिक लोगों का सिर लबा होता है। मित्र वैज्ञानिकों ने (एंथ्रोपोलोजिस्टोने) खोज कर इस सिद्धांत को झूठा

बताया है। उनका कहना है कि बुद्धि से और सिरकी लबाई चौड़ाई से कोई संबंध नही। अब सभी सस्कृत मनुष्य जातिका सिर गोल होता जाता है।

× × ×

एक अमेरीकन वैज्ञानिक ने बहुत प्रयत्न से यह पता लगाया कि सिनेमा देखने से जवान लड़कियो के शरीर का तापमान एकाध डिग्री बढ़ जाता है। सिनेमा से मनोविनोद और आराम होता है, इस सिद्धांत का इससे खडन हो जाता है।

× × ×

युद्धकाल में वैज्ञानिकों को आविष्कार की सनक सवार ह गयी और फलस्वरूप लाखों की सख्या में पेटेण्ट कराने के लिए अर्जियां पड़ीं। इनमें कुछ लोगो ने तो बडे ही अद्भुत आविष्कारोंकी सूचना दी थी। एक वैज्ञानिकने लिखा था मैंने ऐसा पदार्थ ढूँढ़ निकाला है जिससे आकाश में बादलो को जमाया जा सकेगा। दूसरे ने ऐसी 'काली रोशनी' के आविष्कार की सूचना दी थी जिससे चांदको ढका जा सके और पूर्णिमा के दिन भी पूर्ण ब्लैकआउट किया जा सके। एकने लिखा था 'मैंने ऐसे बम ढूँढ़ निकाले हैं जो जिस तोप से फेंके जायँगे उसे ही नष्ट कर देंगे।' दूसरे ने ऐसा टारपीडो ढूँढ़ निकाला था जो लक्ष्य चूकने पर पुन. घूमकर लक्ष्य की ओर गन्तव्य होता था। तीसरे ने तेज गति से घूमने वाले पर्दे निकाले थे जो घरो पर या जहाजो पर लगाये जा सकते थे और वायुयान से गिरे बमोको वापस फेकने की शक्ति रखते थे। चौथेने ऐसा बड़ा विद्युत चुम्बक निकाला था जो पनडुब्बी को जलसे बाहर खींच सकता था। इन में बहुत से आविष्कार कोरी गप्प भी थे।

अन्य मनोरंजक आविष्कार भी हुए हैं। ऐसी खिड़कियां बनायी गयी है जो चोरको कमर से पकड़ लेती हैं। कुम्भकर्णी नींद में सोनेवालों के लिए ऐसी घड़ियां बनायी गयी हैं जो न केवल घंटी बजाती है बल्कि उसे झकझोर भी देती है। विज्ञापन के नये तरीकों में सिगरेट पर अदृश्य अक्षरों में छपा विज्ञापन, जो सिगरेट के जलने पर प्रकट होता है, निकला है। अंधों के लिए बोलती हुई बाइबिल बनी है। एक ऐसा सूटकेस बनाया गया है जो साढ़े तेरह फुट लंबा, आठ फुट चौड़ा और छब्बीस इञ्च मोटा है। इसका वजन तीस मन है। इसके अन्दर सोलह फुट लम्बा और साढ़े पन्द्रह फुट चौडा ग्रीष्म, वर्षा और शीत से बचाने वाला मकान रखा जा सकता है। सूटकेस से निकालकर भूमिपर मकान खड़ा करने में केवल तीन मिनट लगते हैं। रेलवे विभाग का सबसे आधुनिक आविष्कार अल्युमिनियम के डब्बे है जो साधारण डब्बेसे मजबूत मगर हल्के होते है। युद्धकाल में कीमती धातु न मिलने के कारण पेलेडियम धातुकी अंगूठियां उपयोग में लायी जा रही हैं।

टाइपराइटर की तरह 'टाइपाटयून' नामका एक बाजा बनाया गया है। इस में टाइप करने पर संगीत की धुनें निकलती है।

× × ×

वैज्ञानिकों की कुछ सलाहे ये हैं:—

गोलाबारी और मशीन की खड़खड़ाहट में बात-चीत करनी हो तो कान में अंगुली डालकर बात करनी सुननी चाहिये।

अंधेरे में देखने जाना हो तो जाने के कुछ देर के लिए काला चश्मा लगा लेना चाहिये।

खड़े होकर शराब पीने से कम चढ़ती है, लेट कर पीने से अधिक चढ़ती है।

मनुष्यकी बुद्धि का सबसे अच्छा समय ३२ साल की उम्र है।

× × ×

जर्मनो ने ब्रिटिश सैनिको को घर लौटने के लिए बीमार बनने का बहाना करने के लिए कुछ डाक्टरी उपाय बताये थे। उन में से कुछ ये हैं—त्वचा रोग के लिए आयोडीन पोटाशियम रोज खाओ। पेटके फोडेका बहाना करने के लिए अस्पताल में रोज शामको खूनकी पाउडर खाओ। खूनकी परीक्षा में पेटका फोडा साबित होगा। हृदय रोग के लिए रोज खूब सिगरेट पीयो।
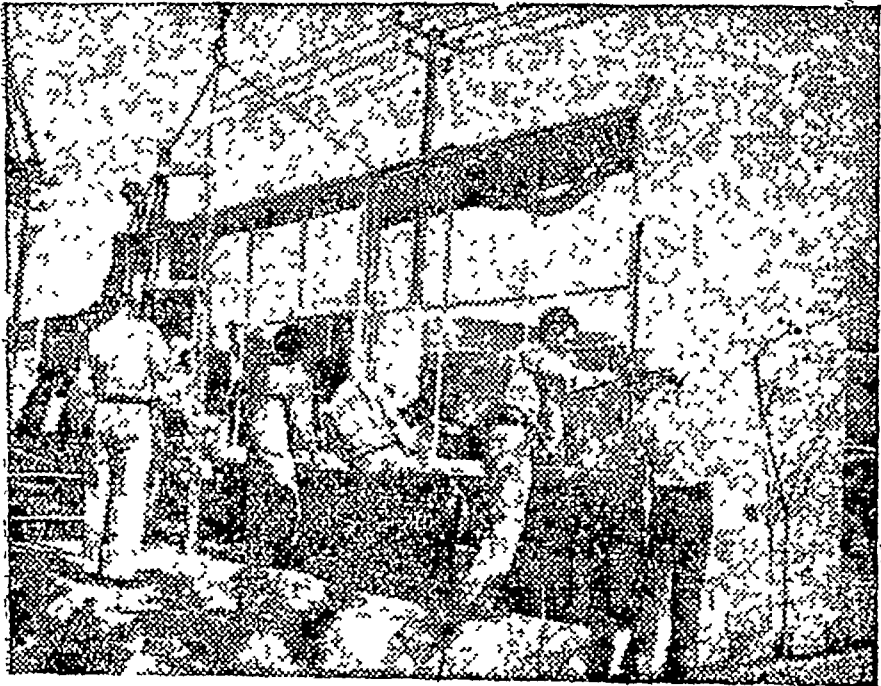
(१२)

भविष्य की दुनिया

द्वितीय महायुद्ध में हुई वैज्ञानिक प्रगतिका पूरा इतिहास अभी लिखा जाने को है, पर जो कुछ मालूम हुआ है और उसको पाठकों के सामने रखने का यहाँ जो प्रयत्न किया गया है उसीसे स्पष्ट है कि प्रकृति पर मनुष्य ने कहाँ तक विजय पायी है, कहाँ तक प्रकृति का रहस्य-भेद उसने किया है। जो कुछ मिला है उससे चाहे जो आश्चर्य संसारके सामने रखा जा सकता है। परमाणु विघटन, रंगीन रेडियो दर्शन [टेलि विजन] रेडियो नयन [रेडार या रेडियो लोकेशन], विमानों का जेट शक्ति से परिचालन, रेडियो से दूर दूर बमो और विमानो का चालन, समय के छोटे छोटे अंशका मापन ये कुछ ही नाम पूरी सूची में से गिनाना काफी है। सारी सूची तो कुछ एक अविश्वसनीय सी चीज लगेगी।

इन सब वैज्ञानिक शोधों का युद्ध के बाद अब विश्व के पुनरुद्धार और पुनः सघटन में उपयोग करना है। शक्ति उत्पादन और वितरण, खाद्य पदार्थ उत्पादन वृद्धि, प्राकृतिक सम्पत्ति का अधिकाधिक उपयोग आदि में मनुष्य को और राष्ट्रों को विज्ञान की पूरी मदद मिलेगी। वैज्ञानिक भी हमें भारी संख्या में तैयार करने पड़ेंगे।

विश्व संघ को कोई ऐसा संघटन करना पड़ेगा कि दुनिया के

सारे वैज्ञानिक एक साथ मिलकर काम करें। द्वितीय महासमर में ब्रिटेन, अमेरिका आदि के वैज्ञानिक एक होकर काम कर सके इसीलिए पेनिसिलीन, रेडार, परमाणु बम आदि का आविष्कार हो सका। (ऐसा संघटन करने के पहले यह भी देख लेना होगा कि युद्धकाल के सहयोग से जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे कोई एक राष्ट्र अपनी साधन सम्पन्नता के कारण या अपने राष्ट्रीय स्वार्थ की दृष्टि से गुप्त न रखने पावेगा। परमाणु बम का अविष्कार इसी दोष के कारण जगतपर कुछ काल के लिए तीसरे महायुद्ध का कारण हो गया प्रतीत हो रहा था।)

राष्ट्र की सारी सुसम्पन्नता इसी बात पर निर्भर करती है कि हम आधुनिक विज्ञान और नियोजन की सहायता से जमीन पर, जमीन के अंदर, हवा में, पानी में अधिक से अधिक साधन कैसे उत्पन्न करे। आर्थिक सामाजिक सिद्धात, जकात कर, बेकारी बीमा स्वास्थ्य कार्य, नये प्लास्टिक, रसायन, बिजली के नये-नये यंत्र, लोक तत्र और यहाँ तक की अतर्राष्ट्रीय समझौते बस इसी एक बात पर निर्भर करते हैं कि हम अपने देश में प्राप्य साधनों का कैसा उपयोग करते हैं।

दुनिया में बड़ी बड़ी नदियों से जो घाटियाँ बनीं हैं उसी में अधिकतर दुनिया के मनुष्य बसते हैं। इन नदियों के प्रवाह में प्रकृति की भारी शक्ति छिपी रहती है। आदमी ने आजतक विना सोचे समझे जगल खूब काटे और खेतो से भी खूब पैदावार निकाल कर उन्हें निस्सत्व कर दिया। परिणाम यह हो रहा है कि नदियों की सारी शक्ति विनाशक बाढों में लग जाती है। बाढ़ और अकाल से इतने आदमी मरते हैं जितने लड़ाइयो में भी नहीं मरते। पर नदियो की सेवा कर घाटियां पुनः सत्वपूर्ण

की जा सकती है। उनके उपयोग से बिजली पैदा कर फिर उसी बिजली से मनुष्य की सुख सुविधाएँ बढ़ायी जा सकता है। अमेरिका में टेनेसी नदी की घाटी में यह किया गया है। आज वहाँ प्रतिवर्ष १२ अरब कीलोवैट अवर शक्ति उत्पन्न की जा रही है। १ कीलोवैट अवर १ आदमी की १० घंटे की मशक्कत के बराबर होता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कितनी शक्ति मिलती होगी।

सूर्य-शक्ति—जर्मनी ने युद्धकाल में सूर्य-तोप बनाने का स्वप्न देखा था, पर रूसने सूर्य शक्ति से रचनात्मक काम लेना शुरू भी कर दिया है। वस्तुतः सूर्य सोवियट-सङ्घका एक अङ्ग हो गया है। रूस सच्चा शक्ति-उपासक कहा जा सकता है। पिछले २५ साल में उसने ५ रंगो को अपनी सेवा में लगा लिया। साधारण कोयले का काला रंग, नदियों की तेजधारा का सफेद रंग, पेड़ों के ईंधन का हरा रंग, हवा की शक्ति का आकाश-नील रंग और समुद्र की लहरों और ज्वार की शक्ति का समुद्र-नील रंग रूस की सेवा कर ही रहा था, अब सूर्य किरण का पीला रंग भी सोवियट सङ्घ की सेवा में लग गया है। सूर्य की शक्ति इतनी अपरिमित रहती है कि यदि पृथ्वी के एक दशांश स्थल पर ही सूर्य शक्ति के स्टेशन खोले जायँ तो १७० अरब कीलोवैट शक्ति मिलेगी। नीपर- बांध से जितनी शक्ति मिलती है उससे ३० हजार गुना अधिक शक्ति १५ अरब कीलोवैट शक्ति के बराबर होती है। १९४१ में स्टालिन ग्राड में पहला स्टेशन बना। इससे हजारों एकड़ ऊसर जमीन उपजाऊ हो गयी। चौपायों की वृद्धि हुई और दूध भरपूर मिलने लगा। इनकी मशीनों को हीलियो मशीनें कहते हैं। एक ऐसे इञ्जिन से १५०० डिग्री सेण्टीग्रेड

गरमी पैदा की गयी है और धातु पिघलाये गये हैं। इन इञ्जिनों से वरफ के कारखाने चलाये जा सकते हैं। खाना पकाने में इस गरमी से काम लिया जा सकता है। गरमी में एकत्र सूर्य की गरमी से जाड़े में मकान गरम रखे जा सकते हैं। पानी गरम करना, कपड़े धोना, वर्तन मलना आदि काम इससे लिये जा सकते हैं। रसायन उद्योग में तो यह वहुत काम देगी।

• हमें देश के कोने कोने में इसी तरह बिजली पहुँचानी होगी। खेतों में विजली की सहायता से मशीनें चलाकर काम लेना होगा। वड़ी बड़ी मशीनें भी अब देश के कोने कोने में पहुँच सकती हैं क्योंकि इतने भारी विमान बने है कि वे बहुत बड़ी वड़ी मशीने भी ढो सकते है।

विमानों से चित्र लेकर भूमि के अंतराल में छिपी सम्पत्ति की खोज की जा सकेगी। खान-खान और क्षेत्र-क्षेत्र के विस्तृत मानचित्र वनाकर यह काम किया जा सकेगा। दुनिया के कोने-कोने में नव जाग्रति का सदेश और नवीन जगत के साधन प्रस्तुत करने के लिए युद्ध में तैयार छतरी सैनिक भी बहुत मदद दे सकेंगे। (रूस में छतरी सैनिक ८ मील ऊपर से नीचे आ चुके हैं।) युद्धकाल मे फोटोग्राफी की जो उन्नति हुई है उसका उपयोग स्वास्थ्यप्रद नगर और ग्राम रचनाओं की ओर किया जा सकता है। भूप्रदेशों के फोटो लेकर यह रचना आदर्श की जा सकेगी।

मोटर, विमान, रेडियो, टेलिफोन आदि यातायात और वार्तालाप के उन्नत साधनों को देखते हुए और उनका पूरा उपयोग करने के लिए और जगत की स्वास्थ्य-वृद्धि करने के लिए हमें अपने शहरों की आज की रचना बिलकुल तोड देनी होगी।
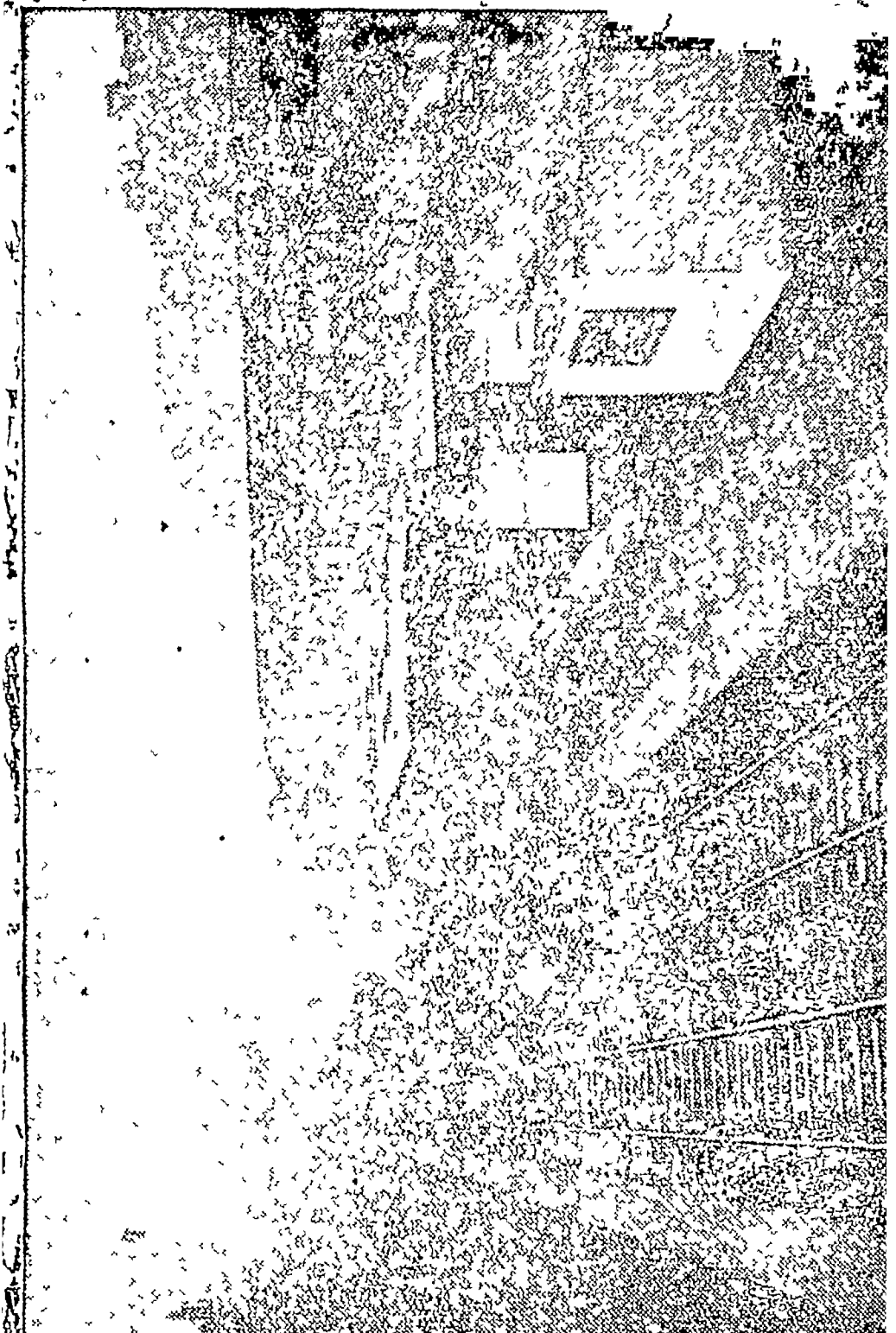
और १ स्नानागार। ठढे देशों में मकानो को गरम रखने के लिए अंदर चूल्हें भी बने हैं। ये कोयले, गैस, बिजली आदि से जलते हैं। घरेलू काम भी यंत्र ही करेंगे।

झाड़ू देने, टब आदि साफ करने के लिए बिजली के झाड़ू बन चुके हैं। बरसात में दियासलाइयां न जलने का झगड़ा अब नही रहा। भींगने पर भी जलनेवाली दियासलाइयां युद्धावश्यकता ने बना ली हैं। घर में आपकी तालियां खो गयी और रुपये पैसे कहीं गिर गये तो खोजने की परेशानी नहीं। युद्धकाल में बने सुरग-खोजक (माइनडिटेक्टर्स) अब आपका यह काम कर देंगे।

ट्रेटा-क्रेमिल सिलिकेट से एक ऐसी चीज बनायी गयी है जिसे द्रवात्मक ऊष्णता (लिकिड हीट) कहते हैं और जिससे घर में गरम करने, रसोई पकाने, ठंढा-गरम रखने की मशीन चलाने (रेफ्रिजरेशन) और रोशनी करने का काम एक ही चीज से किया जा सकता है।

युद्धकाल मे प्लास्टिक से 'प्लैम्टोग्लेज' नाम का एक रग बनाया गया है। यह जहाजो पर लगाया जाता है। पहले के ६ दिन का काम इससे १ दिन में होता है। गरमी और नमी का इस पर असर नहीं होता। चाहे जब आसानी से निकाल दिया जा सकता है। रगने पर दीवार बिलकुल शीशेसी मुलायम मालूम देती है। युद्ध के बाद अब दीवारे रंगने के लिए यह बड़ा काम आवेगा। रग अति शीघ्र सुखाने के लिए गरमी पैदा करनेवाले यंत्र भी बनाये गये है।

चित्र बायीं ओर—एक बना बनाया रेलवे स्टेशन

रसोई घर में लगनेवाली सारी चीजें हलके और सुन्दर रंग के प्लास्टिक की बनायी गयी है। 'रकालाइट' नामक प्लास्टिककी ये चीजे बहुत जल्दी साफ की जा सकती हैं, पानी से खराब नहीं होती, मुड़ती नहीं और देखने में बड़ी सुन्दर है।

दरवाजेकी कड़ियां-मुठियां, दीवारे आदि प्लास्टिककी बनायी जा रही हैं। अलूमिनियम और प्लास्टिकके मेल से एक 'एल्पला' बना है जिसकी ९ फुट ऊंची दीवार २ आदमी दो मिनटमें खड़ी कर सकते है।

एक रूसी वैज्ञानिक ने ऐसा रंग बनाया है जो हजारो साल तक बना रहता है, सरदी, गरमी, बरसातका उसपर कोई असर नहीं होता।

जग लगनेसे रोकनेवाले तरह-तरहके मसाले भी बनाये गये हैं। मशीनोंपर और खास कर खेतीकी मशीनो पर इसका बड़ा उपयोग होगा।

प्लास्टिक से संसार की सबसे पतली वस्तु बनाना सभव है। दस परमाणु की मुटाई अथवा एक इञ्च के बीस लाखवे हिस्से इतनी पतली प्लास्टिक की फिल्म एक अमेरिकन कपनी ने बनायी है। निकट भविष्य में बर्तन, फर्नीचर, कपड़े तथा बहुत से सामान प्लास्टिक से बनने लगेगे।

इसी प्रकार कोयले से केवल अग्नि ही नहीं अब घर, खिड़की के शीशे, बर्तन, मेज कुर्सियाँ, कपड़े तेल और कृत्रिम बीयर (शराब) बनाना संभव है। दूध से भी ऐसे सामान बन सकते हैं। शीशे और कांच बनाने की कला भी खूब बढ़ी है—

चित्र सामने—रसोई घरकी सारी चीजें प्लास्टिक की होंगी
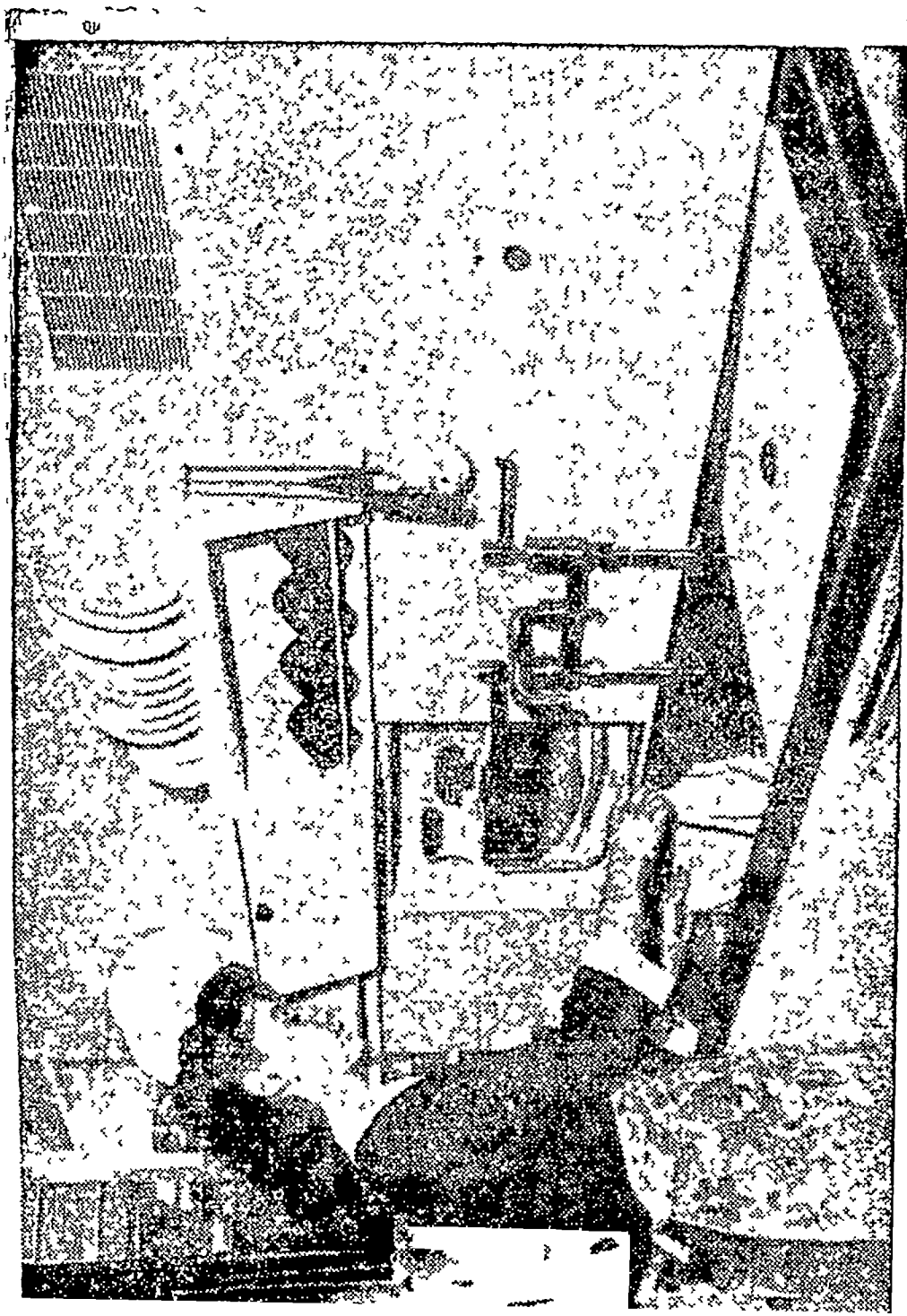
और महीन शीशे के तारों से अब कपड़े बुने जाने लगे हैं। नकली सिल्क बनाने के लिए भी कई सफल प्रयत्न किये गये हैं। घास, सेवार आदि से सिल्क बन सकता है। 'रेयान' नामक कृत्रिम सिल्क इसी प्रकार से बनता है। घास से बनने वाले सिल्क के डोरे इतने हल्के होते हैं कि एक हजार मील लम्बे डोरे का वजन केवल एक औंस होता है। सेवार से अगर-अगर नामक पदार्थ बनता है जिसका उपयोग सस्ती अमेरिकन आइसक्रीम, चीनी घोसले, एलेक्ट्रोलेटिंग तथा हल्के जुलाब की दवा के रूप में होता है।

'स्टाइरेलाय' नामक कृत्रिम रबर का भी आविष्कार हो चुका है। तिनकों से अब कागज बनाया जा सकता है। कागज भी ऐसा बन सकता है जो जलमें न भींगे—ऐसे कागज से थैले, तम्बू, छाते और हवाई छतरियाँ बन सकती हैं। लाख-से-'यूरोलाक' नामक मिश्रण बनाया गया है जिस पर तेजाब और अम्लका असर नहीं होता। 'फ्रेआल' नामक रासायनिक मिश्रण का उपयोग मशीनों को ठंढा करने के लिए होता है। बालू से प्राप्त 'कार्टज' नामक पदार्थ से उत्तम छड़ियां बन सकती हैं।

नागरिकोंके आराम का भी विज्ञानने बड़ा उत्तम प्रबंध किया है। सिनेमा देखनेके लिए अब गद्दीदार कुर्सियोंपर बैठनेकी तकलीफ न उठानी पड़ेगी। लेटे-लेटे सिनेमा देखनेका प्रबंध किया गया है। सिनेमा घरोंमें छतपर परदा रहेगा और आप लेटे-लेटे सिनेमा देखेंगे। सिनेमाघरों को ठंढा-गरम रखनेके यंत्र तो बहुत पहले निकल गये हैं, पर अब ऐसे यंत्र बने हैं कि चाहे जैसा नकली मौसिम सिनेमा हालमें पैदा किया जा सकेगा।

सैनिकोंकी हर मौसिमकी ट्रेनिंगके लिए ऐसे हाल बनाये गये थे।

भावी बालकोंके लिए विज्ञान दूध की कमी न पड़ने देगा। सोयाबीनसे दूध बनानेकी विधि वैज्ञानिकों ने मालूम कर ली है (यह काम बंगलोरके इंडियन इन्स्टीटयूट आव साइंस में हुआ है।) इस दूधमें गायके दूधके बराबर ही प्रोटीन, चरबी और खनिज-पदार्थ रहते हैं। सोयाबीनका दालकी तरह उपयोग नहीं करना चाहिये। इसके दूधकी मलाई और दही भी बनाया जा सकता है। बच्चोंको गायके दूधका ६० फी सदी फायदा सोयाबीनके दूध से मिल सकता है। सोयाबीन ६ से ८ आना सेर तक मिलता है और उसका दूध दो आना सेर बिक सकता है। १ सेर सोयाबीन में ६ सेर दूध बनता है। गरीब लोग गायके दूध में इसे मिलाकर ले सकते हैं।

सुलभ प्रसूतिके लिए भी एक बेहोशी की दवा ईजाद की गयी है। पेन्सिल बराबर खानेमे यह रखी रहती है और आगे एक नली रहती है। प्रसूत होनेवाली स्त्री पेट दर्द शुरू होते ही इसे सूंघ लेती है। क्लोरोफार्म-की तरह इसकी महक रहती है, पर उसके बुरे असर से यह रहित है। इसका नाम ट्राइलीन है।

भविष्य मे उच्च शिक्षार्थी छात्रों को रोज रोज विश्वविद्यालय जानेकी तकलीफ न उठानी पड़ेगी। छात्रों के लिए रेडियोपर व्याख्यान होगे और छात्र घर बैठे इन्हें सुन सकेंगे। युद्ध में पाठ्य पुस्तकों का नष्ट होना, शिक्षालयों की इमारतों का गिरना और अध्यापकों का मरना शिक्षा के लिए बड़ा हानिकर सिद्ध हुआ है। एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित कर रेडियोपर शिक्षा देनेका प्रबंध हो सकता है। जगत के प्रमुख वैज्ञानिक और साहित्यकार अपने-अपने कमरों में बैठ कर व्याख्यान ब्राडकास्ट

करेंगे। रेडियो से व्याख्यान सुनकर छात्र पत्र व्यवहार द्वारा पाठ्यक्रमों से लाभ उठायेंगे। विद्यार्थी वर्षमें १ या दो बार किसी केन्द्र में एकत्र होकर परस्पर संपर्क भी स्थापित कर सकेंगे।

भविष्य के नागरिक का जीवन बहुत स्वास्थ्यदायक होगा। और स्वास्थ्य ही समृद्धि की कुंजी होता है। गत ४५ वर्ष में अमेरिकन नागरिक की औसत आयु २० साल बढ़कर ६३ साल की हो गयी है। यह नियोजित स्वास्थ्यका ही परिणाम है। फिर भी दुनिया में हर तीन आदमी के पीछे दो को आवश्यक पुष्ट अन्न खाने को नहीं मिलता। भूख ही दुनिया के सारे उपद्रवों की जड़ होती है। भूख से डर और लालच पैदा होता है। आजतक समझा जाता था कि सारी दुनिया के मनुष्यों को यथेष्ट खाद्यान्न देना मनुष्य की शक्ति के परे है, पर द्वितीय महासमर में विशुद्ध विज्ञान और व्यावहारिक विज्ञान की जो प्रगति हुई है इसका उपयोग विश्व में प्राप्त भौतिक साधनोंपर किया जाय तो दुनिया भरके हर एक मनुष्य के लिए काफी अन्न और वस्त्र उत्पन्न हो सकता है। विज्ञान ने पिछले ६ वर्ष में कितनी बड़ी क्रांति की है। मनुष्य संतुष्ट रहेगा तो शांतिका अभिलाषी होगा और युद्ध अपने आप बंद होंगे। मनुष्य स्वस्थ, सुरक्षित और सुखमय जीवन चाहता है। ये नहीं मिलते तभी वह या तो विद्रोही होता है या अंधा बनकर सब्ज बाग दिखानेवाले किसी भी अधिनायक के पीछे जाता है। और अशांति इन दो ही कारणों से होती है—जनविद्रोह या युद्ध।

आजकल बीमा कम्पनियाँ मनुष्य के जीवन का बीमा करती है और राष्ट्रकी स्वास्थ्य-वृद्धि करने के लिए सरकारी चिकित्सा विज्ञान विभाग को आर्थिक सहायता करना अपना कर्तव्य

समझती हैं। कल की दुनिया मे बीमा कम्पनियाँ रोगोका भी बीमा करेंगी। कुछ भीषण रोग ऐसे हैं जिनके बारे में बीमा-कम्पनियाँ कह सकती हैं कि ये जिनको होंगे उनको हम इस प्रकार सहायता करेंगे यदि वे हमारे सदस्य होंगे।

जार्ज वर्नार्ड शा ने यह जो भविष्यवाणी की है कि शीघ्र ही मनुष्य ३०० वर्ष जीवित रहनेका उपाय ढूँढ़ निकालेगा उसका मूलाधार यही वैज्ञानिक उन्नति है।

१०५ साल पहले यह एक अनोखी बात मालूम होती होगी कि सारे शहर के शहर को पानी छानकर नल द्वारा दिया जाय ताकि उसमें जहरीले पदार्थ या रोगकीटाणु न रहें। पर आज यह बात भारत में भी हर शहर में दिखाई देती है और कोई यह सोचता भी नहीं कि यह कोई हालकी चीज है। अगले ५० साल में शहरो को हवा भी छानकर दी जायगी। बड़े-बड़े शहरों के बाहर हवा छानने के लिए बड़े बड़े वैज्ञानिक परदे लगाये जायँगे ताकि हवा से कोई रोग न बाहर से आवे न शहर से कोई रोग बाहर जाय।

कृत्रिम प्रकाश से घर के अन्दर पेड़-पौधे उपजाने का काम भी अमेरिका में शुरू हो गया है।

निकट भविष्य में तार के टेलिफोन की जगह बेतार के टेलिफोन का जाल दुनिया भरमें फैल जायगा। अमेरिका में तो अगले ७ वर्षों के अन्दर ही इसे देश भरमें चालू करने की योजना बन चुकी है। अन्धड़ आदि प्रकृति कोप और तार के टूटने से सम्पर्क स्थापित करने में जो बाधाएं आती थीं वे इससे दूर हो जायँगी। दूर-दूर टेलिफोन पाने में घण्टों जो रुकना पडता है वह न पड़ेगा। घर पर ही डायल से दूर-दूर का नम्बर

१ मिनट में मिल जायगा। ३०-३० मील पर रेडियो मीनार बनेंगे और बोलने के अलावा, तार भेजने, टेलिप्रिंटर (दूर लेखन, दूर मुद्रण, दूर चित्रीकरण) आदि काम भी किया जा सकेगा।

साधारण रेडियो की जगह टेलिविजन या दूर-दर्शन सेटोंका प्रचार खूब होगा। अमेरिका मे इसी समय १०० पीछे १८ आदमियों के पास टेलिफोन हैं और १०० परिवार पीछे ८२·८ परिवारों के पास रेडियो है। १९४२ में कुल ६१६ रेडियो स्टेशन वहाँ थे। इनकी उन्नति अब दिन दूनी रात चौगुनी होगी। वार्तालाप के साधनों का शिक्षा में खूब उपयोग होगा। १ आदमी भाषण करेगा और करोड़ों लोग उसे एक साथ सुन सकेंगे, देख सकेंगे।

५ नवम्बर १९४५ को इस विज्ञान के क्षेत्र मे एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घोषणा की गयी है। आजतक टेलिविजन और रेडियो की लहरें अलग-अलग होती थीं। टेलिविजन के लिए १० मीटर से कम और रेडियो के लिए अधिक लम्बाई की लहरें इस्तेमाल की जाती थीं। ५ नवम्बर को इतिहास का ऐसा प्रोग्राम पहले-पहले ब्राडकास्ट किया गया जो एक ही लहर पर दूर ध्वनि और दूर-दर्शन भेज सकता था। यह उस टेलिविजन ट्यूब से ही संभव हो सका जो वर्तमान से १०० गुनी ज्यादा शक्तिशाली (नाजुक-सेन्सिटिव) है। इसके पहले भीषण प्रकाश से प्रकाशमान चीजें ही टेलिविजन से भेजी जा सकती थीं। साधारण श्रोता-वक्ता अधिक समय तक इतनी तेज रोशनी बरदाश्त नहीं कर सकते थे। नये ट्यूब से (इसका नाम इमेज आर्थिकान ट्यूब है।) यह संभव हो सका है। इस ट्यूब का

एक ही केमरा उस दिन अमेरिका में गैर सैनिक कार्य के लिए मिल सका था। सवाक चित्र की तरह सवाक रेडियो दर्शन संभव हो गया है। इसी सेटपर रङ्गीन चित्र भी भेजे जा सकते हैं।

ब्रिटेन में दूसरे दिन इसी की घोषणा की गयी। टेलिविजन मे १ सेकेण्ड में २५ चित्र बदलते हैं। ये चित्र लाइन-लाइन से बनते हैं। एक-एक लाइन ९०।१० लाख सेकेण्ड में बनती है। एक लाइन से दूसरी लाइन में जाने में १०।१० लाख सेकेण्ड लगता है। ४०० लाइन का पूरा चित्र रहता है। लाइन बदलने में १०।१० लाख सेकेण्ड का जो समय जाता है उसी में उस पर ध्वनि की लहर चढ़ायी जाती है।

जिस प्रकार रेडियो पर कई लाउडस्पीकर लगाये जा सकते हैं उसी प्रकार एक टेलिविजन सेटसे घर भर के कई कमरो में कई टेलिविजन परदे लगाने की क्रिया भी अब मालूम हो गयी है।

दीवारो के कान होते हैं यह कहावत केवल कहावत नहीं रही। युद्ध के बाद मालूम हुआ है कि हिटलर और चेम्बरलेन की जो बातचीत हुई थी वह रेकार्ड कर ली गयी थी। उसके रेकार्ड मिले हैं।

अखबारी दुनिया में बड़ा परिवर्तन होगा। खबरें टेलिप्रिंटर से नहीं, पर टेलिविजन से दी जायंगी। रिपोर्टर अपने साथ टेलिविजन सेट ले लेकर घूमेंगे और अपने अखबारो या एजेन्सियो को सचित्र खबरें भेजते चलेगे। दुनिया मे अत्याचारी सरकारो की अत्याचारी पुलिस को फिर शरमाना पड़ेगा। अखबार वेंचने और ५ सेंट का सिक्का डालनेपर बाकी रेजगारी

देनेवाली मशीनें तो अमेरिका में इसी समय काम करने लग गयी हैं।

युद्धकाल में हवाई जहाजों की सहायता के लिए दुनिया भर में जो मौसिम के अनुसधान के स्टेशन वने थे उनका शान्ति में वड़ा उपयोग होगा।

यात्रा के साधनो में भी भारी परिवर्तन होंगे। रेले और मोटरें जेटशक्ति से और ५० साल बाद शायद परमाणु शक्ति से चलेगी। मोटरो की वत्तियो की चकाचौंध के कारण जो दुर्घटनाएं होती हैं वे भविष्य में वहुत कम होंगी क्योंकि वत्तियां अब मोटर में बैठे बैठे बटन दवाकर ढक्कन से ढांकी जा सकेंगी।

बम मोटर

स्थलपर की गति की पराकाष्ठा ३६८ मील से ५२० मील प्रति घंटा करने के लिए एक ब्रिटिश वैमानिक एक नये ढङ्ग की मोटर बनवा रहे हैं। इसमें १२ फुट व्यास का केवल एक बड़ा

मोटर बम
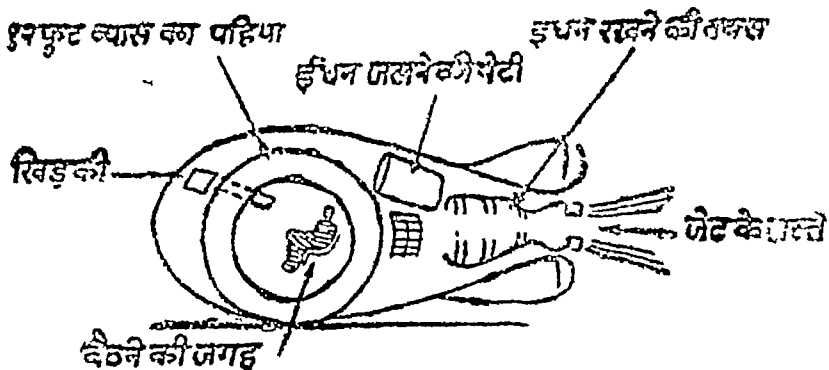
पहिया रहेगा। मोटर बम के आकार की २३ फुट लंबी और १५ फुट ऊंची रहेगी। सीट पहिये के अन्दर ही रहेगी। मोटर

नये ढङ्ग के शीशे से बनेगी। उसका नाम भी 'बम' रखा गया है। इञ्जिन बी २ बाण के ढङ्ग का जेट इञ्जन रहेगा। इंधन द्रववायु के रहेंगे। पीछे दो छोटे पहिये रहेंगे ताकि सड़कपर मोटर ठीक खड़ी हो सके। दौड़ते समय वे उठा लिये जायगे। मोटर चलाने का काम मशीन से बटन दबाकर किया जायगा। देखने के लिए सामने पेरिस्कोप की खिड़की रहेगी। वजन १ टन और दाम ३ हजार पौंड रहेगा।

एक ही उडान मे अधिक से अधिक दूर जाने के प्रयत्न भी हो रहे हैं। १६३८ में दो ब्रिटिश विमान मिस्र से पोर्ट डारविन [आस्ट्रेलिया] ७१५८ मील बिना रुके गये थे। बी २६ जापान से वाशिंगटन ६५४४ मील जा चुका है। ८००० मील तक उसे ले जाने के प्रयत्न हो रहे हैं।

बेतार की शक्ति से चलनेवाली मोटरें भी वैज्ञानिक खोज रहे हैं। इनमें पहिये नहीं रहेंगे, पर यह चुम्बकों के आकर्षणादि से सड़क के ऊपर उठकर तेजी से बिना धक्के के चलेंगी।

चलती रेलगाड़ियों में रेडियो टेलिफोन बैठाये गये हैं। यात्रा में ले जाने के लिए थर्मस और टिफिन कैरियर की तरह छोटे रेफ्रिजरेटर भी बनने लगे है जिससे यात्रा में गरम खाना या ठंढा पेय ले जाना आसान हो गया है।

अधिकतर यात्रा अब विमानों में होगी—अमेरिकन लोगों ने तो विमानों को अपना लिया है। वहाँ घरों पर उतर सकने वाले विमान, जिन्हें हेलिफोप्टर कहते हैं, काम भी करने लगे हैं। इनके पङ्ख ऊपर होते हैं और ये सीधे ऊपर हवा में उड़ना शुरू करते हैं, हवाई अड्डों की आवश्यकता नहीं। सड़कों पर भी उतरते हैं क्योंकि मोटर जितनी शीघ्र रुक सकती है उतनी

शीघ्र ये रुक सकते हैं। यात्री, डाक, सामान आदि ये ले जाते हैं। बसों की तरह शायद अमेरिका में इनकी सर्विस भी
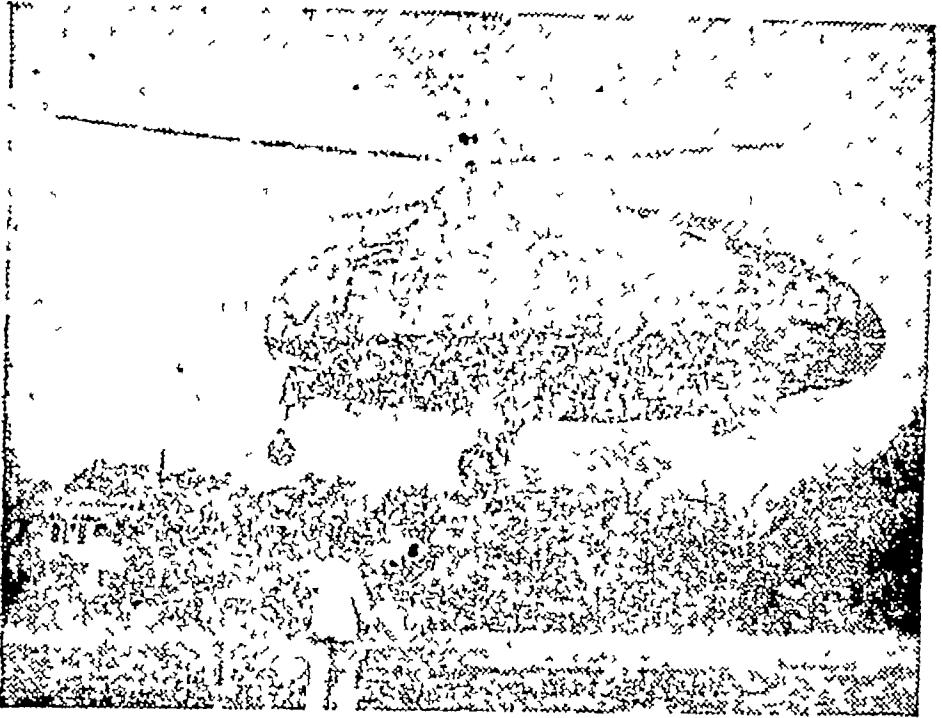
हेलिकोप्टर विमान

शुरू हो गयी है। वाजार करनेवाले लोग वहाँ हेलिकोप्टर पर भी वैठकर दूकानवाला इमारत पर उतरते है और लिफ्ट में बैठकर दूकान में चले जावे।

वी २ वनाने के वाद जर्मन वैज्ञानिको ने एक अति-राकेट (सुपर राकेट) वनाना चाहा था जो १ टन सामान और एक चालक के साथ यूरोप से दक्षिण अमेरिका जाता। जर्मनों ने ३००० मील दूर जानेवाला एक राकेट वना लिया था जो यात्रियों को बैठाकर १७ मिनट में यूरोप से अतलान्तक पार कर

अमेरिका पहुँच सकता था। अमेरिकन वैज्ञानिक, ७५०० मील प्रति घण्टे की गति से यात्रियों को लेकर १४ मिनट मे न्यूयार्क से लन्दन जानेवाले राकेट बनाने की सोच रहे हैं। इनकी उड़ान १२०० से १८०० मीलतक की होगी।

राकेटो की सहायता से ४५ घण्टे में चॉद तक पहुँचना भी मुश्किल नहीं है। चाँद यहाँ से २, ३८, ८४० मील दूर है। १५०० टनका सिगरेटनुमा लम्बा विमान ११५० टन ईंधन लेकर चाँद तक जाकर वापस आ सकता है, पर यह तभी संभव होगा जब परमाणु ई धन का उपयोग किया जा सकेगा। चाँद जानेवाले पहले विमान में यात्री नहीं जायँगे, पर विस्फोटक भेजा जायगा और उससे चॉद पर हुए विस्फोटकी नये टेलिस्कोपो मे परीक्षा की जायगी।

परमाणु शक्ति का भविष्य

परमाणु बम के आविष्कार ने दुनिया के सामने एक नयी औद्योगिक और सामाजिक क्रांति उपस्थित कर दी है,इसमें सदेह नहीं। विज्ञान के क्षेत्र में भी एक अपरिमित भडार खुल गया है। एक नया युग ही शुरू हुआ है।

वैज्ञानिकों के सामने अब यह प्रश्न आया है कि कल कारखानों के लिए परमाणु के विघटन से उत्पन्न बृहत्तर शक्ति का उपयोग कैसे किया जाय ? उनका पहला काम तो परमाणु विघटन प्रक्रिया की गति घटाना होगा।

परमाणु शक्ति बड़े पैमाने पर और नियन्त्रित रूप में मिलने पर ये व्यापक परिवर्तन किये जा सकते हैं—

प्लैटिनम का सोने में और सोने का शीशे मे रूपांतर किया

जा सकता है। फिर इसी क्रिया को उलटा कर सरलता से प्राप्य धातुओं से दुष्प्राप्य धातु तैयार किये जा सकते हैं।

हरएक धातु किरण विसर्जक बनायी जा सकती है और फिर उसका उपयोग रेडियम की जगह औषधि विज्ञान में किया जा सकता है।

उससे गरमी और बिजली पैदा की जा सकती है। फिर ईंधन के रूप में कोयले का महत्त्व खतम होकर एक ही बिजली घर से सारे ब्रिटेन को बिजली दी जा सकेगी।

चाहे जहाँ अपने मन लायक मौसिम किया जा सकता है। आकाश में बहुत अधिक ऊँचाई पर परमाणु बम के विस्फोट कराकर हवा में ऐसे दबाव पैदा किये जा सकते हैं कि दूर दूर से मेघ आकर वहाँ पानी बरसावे या वहां से मेघों के झुंड तुरन्त दूर भाग जायँ। रेगिस्तानों की जगह लहलहाते बाग बनाये जा सकेंगे।

फसल और पेड़ साधारणतः जितने समय में बढ़ते हैं उससे कम समय में बढ़े। पेड़ की जड़ों में परमाणु शक्ति भरकर वर्षों में बड़ा होने वाला पेड़ कुछ ही दिनों में बड़ा हो जाय। जंगलों की जगह उद्यान बनाये जायेंगे।

आकाश-मंडल में इधर से उधर यात्रा की जा सकेगी। शिकागो के श्री आर. एल. फार्न्सवर्थ का कहना है कि ८ घंटे में चांद तक की रोज की 'सर्विस' मैं शुरु कर सकता हूँ।

परमाणुशक्ति से मोटरें चलायी जा सकती है। कारों में रोशनी के लिए किरण विसर्जक बल्ब लगाये जा सकते हैं। चाहे जितनी छोटी जमीन पर साल के चाहे जिस हिस्से में चाहे जो चीज उगायी जा सकेगी।

सिक्के के लिए 'स्वर्ण मान' की जगह 'शक्ति-मान' चलेगा।

आजकल जिस तरह कोयले का स्थान धीरे धीरे तेल और जल प्रपातो की सहायता से उत्पन्न बिजली ने लिया है उसी तरह तेल और बिजली का स्थान परमाणु शक्ति ग्रहण करेगी। परमाणु शक्ति की सहायता से महासागरो के अदर से विभिन्न धातु, रसायन तथा अन्य पदार्थ निकल सकते हैं। उनसे मनुष्य की समृद्धि में अपार वृद्धि हो सकती है।

यूरेनियम २३५ के एक कण से मुक्त हुई शक्ति के उपयोग से एक हवाई जहाज पृथ्वी का एक पूरा चक्कर लगा सकता है। कुछ रत्ती यूरेनियम की सहायता से 'क्वीन मेरी' जैसे हजारो आदमियों को ढोने वाले जहाज यूरोप से अमेरिका और अमेरिका से वापस यूरोप आ सकते हैं।

कोयले से उत्पन्न शक्ति से यूरेनियम से उत्पन्न शक्ति दस गुनी सस्ती पड़ेगी।

इसका अर्थ यह हर्गिज नहीं लगाना चाहिये कि ये सब बाते बहुत शीघ्र हो जायँगी, पर १०-१२ वर्ष के ही अदर हम किसी न किसी रूप मे परमाणु शक्ति का उपयोग अपने दैनिक जीवन में अवश्य करने लगेगे। अभी तक वैज्ञानिक मामूली विस्फोटक पदार्थों के विस्फोट पर नियंत्रण नहीं कर सके हैं। परमाणु के विस्फोट पर नियत्रण करने में सम्भवत कुछ काल लग सकता है। अमेरिका में शिकागो वश्वविद्यालय में परमाणु शक्ति के शानिकालीन उपयोगो के लिए खोज करने का काम शुरू भी हो गया है।

जगतपर ज्ञानियो-विज्ञानियो का शासन हा तो वे विस्फोटक पदार्थों का उपयोग खाद्य उत्पादन के लिए करेंगे और मानव जानि के स्वास्थ्य में वृद्धि करगे। वे 'वी' बमो से डाक और मुसाफिर ले

जायेंगे, परमाणु शक्ति से रेल जहाज और विमानो के कारखाने के इञ्जिन चलायेंगे। परमाणुशक्ति का शोध जब तक केवल वैज्ञानिकों के हाथ में था तब तक उन्होंने इसका जनहित के लिए ही उपयोग किया। प्रारंभिक शोध के समय वैज्ञानिको के सामने केवल ज्ञान प्राप्ति—निसर्गरहस्य का भेदन ही उद्देश्य था। वे 'ईश्वर' को जानना चाहते थे। 'ज्ञानान्मुक्ति' का पाठ वे पढ़ रहे थे। परमाणु भंग का पहला प्रयोग करने वाले ब्रिटिश वैज्ञानिक रदरफोर्ड कहते थे कि हम इससे यह रहस्य जानना चाहते हैं कि इस सृष्टि में फला पदार्थ अधिक और फला कम क्यों है। वे विशुद्ध ज्ञानमार्गी थे। परमाणु को भंग करने वाली पहली मशीन साइक्लोट्रोन के बनानेवाले वैज्ञानिक लारेन्स ने भी इसे मनुष्य के लाभ की दृष्टि से ही बनाया था।

अस्तु, परमाणु शक्ति का हम अब डाक्टरी मे शीघ्र ही बहुत उपयोग कर सकेगे। हमारे खाने में कुछ विशिष्ट द्रव्य शरीर के किसी विशिष्ट भाग में ही जाते हैं। अब हम किरण विसर्जक खाद्य द्रव्यों से यह जान सकेगे कि अब पदार्थ किस अंग में गया। भेड़ों को एक रोग होता है जो कोबाल्ट द्रव्य की कमी के कारण होता है। अब भेड़ो को किरण विसर्जक कोबाल्ट देकर हम जान जायंगे कि वह शरीर के किस अंग में जाता है। हम जानते हैं कि खाये हुए पदार्थ में से आयोडिन का सारा अंश हमारे गले की ग्रंथि [थायाराइड ग्लाण्ड] में जाता है। यदि हमारी गले की ग्रंथि में कुछ रोग हुआ है और हमें वहाँ किरण विसर्जन क्रियादि कोई उपाय करना है तो हम आयोडीन को साइक्लो-ट्रोन से किरण विसर्जक बना कर दवा के साथ या खाने के साथ दे सकते हैं।

जो कुछ अब तक लिखा गया है उसको ठीक पढ़ने और ठीक समझने से इस बात का विश्वास हो जायगा कि युद्ध केवल विनाशक होता है, पर उसका साथी विज्ञान विनाशक से अधिक विधायक होता है। इसीलिए हम यह आशा कर सकते हैं कि शांतिकाल में विज्ञान की सेवा की और वैज्ञानिकों की किसी भी प्रकार उपेक्षा न की जायगी। और युद्धकाल में प्राप्त सारे ज्ञान का उपयोग शांतिकाल में मनुष्य की सुख वृद्धि और प्रगति और सतोषवृद्धि के काम में होगा। हवाई यातायात में इतनी प्रगति हो गयी है कि दुनिया अब बहुत छोटी हो गयी है। दुनिया के विभिन्न देशों के सांस्कृतिक और व्यापारिक सबधों में इससे भारी परिवर्तन हो गया है। हर एक देश का आर्थिक जीवन भी इससे बिलकुल बदल जायगा। [हवाई जहाजों से अखबार पहुँचाने का काम भारत में भी शुरू हो गया है।] द्वितीय महा-युद्ध के बाद विज्ञान ने ससार को इस हद तक ला दिया है कि भविष्य में खाने और कपड़े की कोई कमी न पड़े। दुनिया में आज भी हर तीन आदमियों में २ आदमियों को पर्याप्त पुष्ट पदार्थ खाने को नहीं मिलते। दुनिया के भौतिक साधनों का उपयोग प्राप्य वैज्ञानिक और व्यावसायिक ज्ञान से किया जाय तो निर्धनता का अंत असभव नहीं है। भूख और गरीबी का नाश तो हमें करना ही होगा।

भारत में युद्ध काल में अप्रैल १९४० में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान मडल (बोर्ड) की और तदनंतर वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद की स्थापना की गयी। इसको वर्तमान भारत सरकार ने बड़ी उदारता से १५ ला[illegible]

वार्षिक 'बड़ी रकम' खर्च करने की अनुमति दी थी। फिर भी इतने से ही भारत ने जो किया वह कम नहीं है।

विज्ञान और वैज्ञानिकों का उद्देश्य समस्त 'संसार को एक संस्था बनाना और समस्त मानव जाति की एक साथ उन्नति करना होना चाहिये। वैज्ञानिको का आदर्श 'एक विश्व' है। तथास्तु।

कुछ अद्भुत प्रकाशन !

परमाणु बम—विश्व को विदीर्ण कर देने वाला एक अकल्पनीय अस्त्र ! भारत की सर्व प्रथम पुस्तक। लेखक: भारत के प्रसिद्ध पत्रकार श्री रा० र० खाडिलकर, बी० एस-सी। सजिल्द पुस्तक, मूल्य केवल ।=)

जगी गेस्टापो—गेस्टापो अर्थात् जर्मनी के दिल दहलाने वाले जासूसी संघटन का रहस्य, हिटलर के पतन का कारण; बिल्कुल ताजी खबरें ! मूल्य केवल ।=)

जादूगर—सच्चा जादू सिखानेवाली, एक अद्भुत और शिक्षात्मक पुस्तक ! लेखक विश्व विख्यात जादूगर, प्रो० नार्मन। सुन्दर, सचित्र, सजिल्द, दुरंगी छपाई। मूल्य १।।)

अजीब दुनिया – बिल्कुल अजीब चीज ! स्त्री, पुरुष, बूढे, जवान और बच्चे, सबके लिए। मू० केवल ।=)

युरोप के दो सिपाही—१९१४–१९१८ तथा १९३९-१९४५ ई० में पृथ्वी में दो प्रलयकारी विश्व-युद्ध देखे हैं। इन दोनों का सूत्रपात युरोप में हुआ और समस्त संसार को अपनी धधकती हुई सर्व—संहारी ज्वाला में लपेट लिया। यहाँ हम उन्हीं दो नरमेधों के दो रण-नायकों का जीवन-चरित्र प्रस्तुत कर रहे हैं जो आपके सम्मुख युरोपियन इतिहास तथा युद्ध-कला का सजीव चित्र उपस्थित किये बिना नहीं रह सकते। इस युद्ध रत विश्व को देखने और समझने के लिए आप 'युरोप के दो सिपाही' को अवश्य देखें। मूल्य केवल ।।=)

गायडा गैंग—युद्ध रत युरोप के एक दिल दहलाने वाले जासूसी संघटन की अत्यंत रोमाञ्चकारी कहानी। मूल्य केवल ।।=)

'नवभारत' अर्थात् गांधीवाद—(द्वितीय परिष्कृत संस्करण)—अस्त-व्यस्त और खून से लथ-पथ, यह आहत उत्पीड़ित और धूलि-धूसरित संसार प्रलय की ओर अग्रसर दीख रहा है। इसे गर्त में टकरा कर बिल्कुल ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाने से बचाने के लिए 'नव-भारत' को मनुष्य का अन्तिम आयोजन समझना चाहिये।

कर्म्म-योग—यह मध्य प्रांतीय कहानीकारों का ('विद्रोही' के पश्चात्) दूसरा प्राण प्रेरक कहानी संग्रह है। इसमें प्रो० राजकुमार और श्री देवीदयाल चतुर्वेदी, 'मस्त', जैसे हिन्दी जगत के जाज्वल्यमान तारों की ज्योति स्फुटित हुई है जिनकी कृतियों का हमें 'विद्रोही' में लाभ न हो सका था।

नव-युग '४१ का हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास।

लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध व्यक्ति श्री रामकृष्ण शर्मा हैं। व्यक्ति और समाज का संघर्षात्मक परस्पर तथा कर्तव्य और पुरुषार्थ का इतना चित्ता-कर्षक चित्रण स्यात ही देखने में आये। भारत मरणान्त संघर्ष में तल्लीन है, परन्तु उसका पथ समूहवादी द्वन्द्व पूँजीवादी प्रभुत्व, दोनों से परे हैं; नाज़ियों की खूँख्वारी और फासियों की नोच-खसोट दोनों की छूत से अछूता, उसका अपना निराला ही मार्ग है। भारत ने 'नव—युग' का आवाहन किया है; संसार में निर्मल शान्ति और सच्ची सम्पन्नता स्थापित करने के लिए 'नवयुग' उसी मौलिक कल्पना का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक से वंचित रह जाना हजारों पुस्तकों की लाइब्रेरी खो देने से कम नहीं। मूल्य ॥=)

डिक्टेटर (एक सनसनी खेज उपन्यास)

द्वितीय संस्करण।

हमारे इस संकट कालीन संसार की एक उत्पीड़क समस्या है। 'डिक्टे-टर-शिप अर्थात् 'तानाशाही'! यदि डिक्टेटर का सजीव चित्र देखना है, यदि डिक्टेटर-शिप के मादक सिद्धान्तों का रहस्य समझना है तो आज ही पुस्तक मँगा लीजिये। मूल्य ॥=)